खण्ड

# 2

## बहुसांस्कृतिक समाज में अनुवाद की भूमिका


इकाई 4
बहुसांस्कृतिकता : एक परिचय 49

इकाई 5
भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारतीय बहुसांस्कृतिकता 57

इकाई 6
अनुवाद एवं पारसांस्कृतिक दक्षता का विकास 67

# खण्ड 2 का परिचय

प्रस्तुत पाठ्यक्रम का खण्ड दो **बहुसांस्कृतिक समाज में अनुवाद की भूमिका** से सम्बन्धित है। प्रस्तुत खण्ड में कुल इकाइयों की संख्या तीन है। नीचे उनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

इकाई 4 का शीर्षक है **बहुसांस्कृतिकता : एक परिचय।** इस इकाई में बहुसांस्कृतिकता की धारणा पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए इसके विभिन्न आयामों पर विचार किया गया है। मानव जीवन को देखने के एक नजरिये के रूप में बहुसांस्कृतिकता क्या है, के साथ ही इस अवधारणा के पक्ष एवं विपक्ष में दिए गए विभिन्न तर्कों पर इस इकाई में विचार किया गया है। बहुसांस्कृतिकता केवल एक विचार ही नहीं अपितु एक नीति भी है जिसे अमेरिका तथा विभिन्न यूरोपीय देशों ने लागू भी किया तथा समय-समय पर जिसे विभिन्न चुनौतियाँ भी मिलती रहीं। प्रस्तुत इकाई में इन सब बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

इकाई 5 का शीर्षक है **भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारतीय बहुसांस्कृतिकता।** प्रस्तुत इकाई में भारतीय सन्दर्भ में बहुसांस्कृतिकता और उसके विभिन्न आयामों जैसे - इतिहास और नृजातीय वर्णन, भाषा, सांस्कृतिक अस्मिता आदि पर विचार करते हुए भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारतीय बहुसांस्कृतिकता को देखने का प्रयास किया गया है। इसमें भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारत की स्थिति, उत्तर औपनिवेशिक काल में भारत की बहुसांस्कृतिकता और विश्व में उसका स्थान तथा बहुसांस्कृतिकता के प्रचार में अनुवाद की भूमिका आदि विभिन्न बिन्दुओं पर विचार किया गया है तथा साथ ही प्रतिनिधित्व तथा अस्मिता के प्रश्न जैसे महत्वपूर्ण बिन्दु पर भी विचार किया गया है।

इकाई 6 का शीर्षक है **अनुवाद एवं पारसांस्कृतिक दक्षता का विकास।** जैसा कि हम सब जानते हैं कि हम भूमण्डलीकृत विश्व का अंग हैं। इस भूमण्डलीकृत विश्व की सबसे बड़ी आवश्यकता है विभिन्न संस्कृतियों से हमारी पहचान। इस समय में हम केवल अपनी संस्कृति या संस्कृति विशेष तक सीमित होकर नहीं रह सकते। ऐसी स्थिति में सभी संस्कृतियों से संवाद स्थापित करने के लिए अनुवाद एक बेहद महत्वपूर्ण माध्यम है। प्रस्तुत इकाई में हमने अनुवाद की इसी भूमिका की ओर संकेत किया है कि किस पक्रार अनुवाद पारसांस्कृतिक दक्षता के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

# इकाई 4 बहुसांस्कृतिकता : एक परिचय

## इकाई की रूपरेखा


4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 बहुसांस्कृतिकता क्या है

4.3 मानव-जीवन को देखने के एक नज़रिये के तौर पर बहुसंस्कृतिवाद

4.4 पक्ष और विपक्ष

4.4.1 बहुसंस्कृतिवाद के पक्ष में तर्क

4.4.2 बहुसंस्कृतिवाद के विपक्ष में तर्क

4.5 बहुसांस्कृतिक समाजों में अनुवाद एवं अनुवादक की भूमिका

4.6 सारांश

4.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें


## 4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- बता पाएंगे कि बहुसांस्कृतिकता क्या है;
- बहुसांस्कृतिकता के पक्ष और विपक्ष में जो दलीलें दी गई हैं, उनका सार प्रस्तुत कर पाएंगे; और
- बहुसांस्कृतिकता के सन्दर्भ में अनुवाद एवं अनुवादक की भूमिका के प्रति सचेत हो पाएंगे और बता पाएंगे कि अनुवाद क्यों एक बेहद ज़िम्मेदारी भरा काम है।

## 4.1 प्रस्तावना

दुनिया का शायद ही कोई ऐसा देश होगा जहां एक ही सांस्कृतिक-धार्मिक-भाषायी पृष्ठभूमि से आनेवाले लोग रहते हों। बहुत पुराने ज़माने से इस धरती पर अलग-अलग तरह से जीने, सोचने और दुनिया को देखनेवाले लोग आपस में मिलते रहे हैं। किसी भी भूभाग में अगर एक संस्कृति वर्चस्व की स्थिति में रही है, तो उसके साथ-साथ अन्य संस्कृतियाँ भी मौजूद रही हैं – कहीं कंधे से कंधा मिलाकर तो कहीं उपाश्रयी की स्थिति स्वीकार कर। जैसे-जैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ पूरी दुनिया में लोगों की आवाजाही बढ़ी है, वैसे-वैसे प्रत्येक भूभाग में सांस्कृतिक वैविध्य भी बढ़ता गया है। आज बहुसांस्कृतिकता विश्व के सभी समाजों की वस्तुस्थिति है। मतलब यह कि हर देश का मानव-समाज किसी न किसी अनुपात में भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक समूहों के मेल से बना हुआ समाज है। बहुसंस्कृतिवाद इसी वस्तुस्थिति की नीतिगत स्तर पर स्वीकृति है।

## 4.2 बहुसांस्कृतिकता क्या है

बहुसांस्कृतिक से तात्पर्य सांस्कृतिक विविधता अथवा सांस्कृतिक बहुलता से हैं। दूसरे शब्दों में, एक ही साथ सभी संस्कृतियों का सम्मान करना तथा संवैधानिक रूप से उन्हें बराबर का स्थान देना बहुसांस्कृतिकता का आधार है। कोई भी देश तभी बहुसांस्कृतिक कहलाता है, जब वह अपने यहां उपस्थित लगभग सभी संस्कृतियों को समान महत्व देता हो। लेकिन समान महत्व देने के क्रम में इस बात का विशेष तौर पर ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि कोई भी एक संस्कृति किसी अन्य पर हावी न हो, और न ही उसके विशालकाय स्वरूप में तथाकथित छोटी संस्कृतियाँ लुप्त हो जाएँ। स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि बहुसांस्कृतिक राष्ट्र वह है जिसकी सीमा में सभी उपलब्ध संस्कृतियाँ अपने पूर्ण अस्तित्व के साथ बनी रहती हैं। पिछले कुछ दशकों में यह बहुसांस्कृतिकता एक राजनीतिक विचार बन कर उभरी है, जिसे बहुसंस्कृतिवाद कहा जाता है।

बहुसांस्कृतिकता एक ऐसा विचार है जिसे कई देशों ने अपनी राजकीय नीति के तौर पर स्वीकार किया है। इसकी चर्चा सबसे पहले 1970 के दशक के आरम्भिक वर्षों में कनाडा और ऑस्ट्रेलिया में शुरू हुई। उसके बाद धीरे-धीरे यह अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी और अन्य पश्चिमी देशों में एक आंदोलन की तरह फैलता चला गया। कनाडा, जहां राजकीय नीति के तौर पर बहुसंस्कृतिवाद को सबसे पहले अपनाया गया और जहां आप्रवासियों की संख्या पूरे विश्व में सबसे अधिक है, के सरकारी दस्तावेज़ों के अनुसार, 'कनाडाई बहुसंस्कृतिवाद हमारे इस विश्वास के साथ जुड़ी हुई सबसे आधारभूत चीज़ है कि सभी नागरिक समान हैं। बहुसंस्कृतिवाद यह सुनिश्चित करता है कि सभी नागरिक अपनी अस्मिता सुरक्षित रख सकते हैं, अपने पुरखों पर गर्व कर सकते हैं और जुड़ाव के बोध (सेंस ऑफ़ बिलॉन्गिन्ग) से सम्पन्न हो सकते हैं।'

यह विचार इस बात पर बल देता है कि किसी समाज में मौजूद विभिन्न जातीय संस्कृतियों को राज्य की ओर से समुचित मान्यता मिलनी चाहिए और उन्हें बहुसंख्यक संस्कृति से अलग ठहरने वाले अपने विश्वासों, रीति-रिवाजों और जीवन-पद्धति को अमल में लाने के लिए पर्याप्त सहूलियतें मुहैया करायी जानी चाहिए। किसी ख़ास जातीय-धार्मिक-सांस्कृतिक समुदाय के मूल्यों को केन्द्रीय मानकर उन्हें मान्यता, संरक्षण और प्रोत्साहन देना तथा अन्य को हाशिये पर धकेल देना अनुचित है। ऐसे सभी समूहों को समानता का दर्जा मिले और उन्हें यह महसूस न हो कि न्यायालय से लेकर प्रशासन और व्यवसाय तक, विद्यालयी पाठ्यचर्या से लेकर विभिन्न संस्थाओं तक, कहीं भी उनके मूल्यों-मान्यताओं का तिरस्कार या स्थगन हो रहा है – यही बहुसंस्कृतिवाद का बुनियादी सूत्र है।

सांस्कृतिक वैविध्य के महत्व पर बल देनेवाली यह मान्यता वस्तुतः समांगीकरण (ऐसीमिलेशन), यानी मिलकर एकमेक हो जाने, की नीति के ख़िलाफ़ है। समांगीकरण की नीति एक मुख्यधारा का निर्माण करके अन्य सभी को उसमें घुला-मिला देने का जतन करती है। उसमें अल्पसंख्यक सांस्कृतिक समूहों की अस्मिता को स्वतंत्र मान्यता और सम्मान नहीं मिलता। यह प्रक्रिया अन्ततः बहुसंख्यक संस्कृति के वर्चस्व को ही मज़बूत करती है। इसी तरह सामाजिक एकजुटता और अखण्डता के नाम पर भी अल्पसंख्यक संस्कृतियों को दबाया जाता है। कहीं उनके विरुद्ध प्रकट तौर पर भेदभाव बरता जाता है (मिसाल के लिए, ऐसे कानून जो कुछ निश्चित समूहों की आज़ादी पर रोक लगाते हैं) और कहीं यह भेदभाव परोक्ष रूप में होता है (मिसाल के लिए, विद्यालयों, विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में अल्पसंख्यक समूहों के ऐतिहासिक, कलात्मक इत्यादि योगदानों को स्थान न देना)। बहुसंस्कृतिवाद इन सभी तरह के रवैयों के विरुद्ध एक आह्वान है।

जैसा कि बताया जा चुका है, कई राष्ट्रों ने 1970 के बाद से घोषित-अघोषित रूप में बहुसंस्कृतिवाद को सरकारी तौर पर अपनाया है। इसके अन्तर्गत कई जगहों पर एक से ज़्यादा देशों की नागरिकता रखने की छूट दी गयी है; समाचारपत्रों, टेलीविज़न और रेडियो पर अल्पसंख्यक भाषाओं को विशेष मदद दी जाती है; अल्पसंख्यकों के त्योहारों और छुट्टियों के लिए विशेष व्यवस्था होती है; स्कूलों, सेना और आम तौर पर समाज में पारम्परिक तथा धार्मिक कपड़े पहनने को मान्यता/की छूट दी जाती है; अल्पसंख्यक संस्कृतियों के संगीत एवं कलाओं को सरकारी मदद मिलती है; हर जातीय समूह के सदस्यों के लिए भिन्न कानून अमल में लाया जाता है। इस तरह के कई प्रयासों के रूप में बहुसंस्कृतिवाद की नीति राज्य के स्तर पर प्रतिफलित होती है।

## 4.3 मानव-जीवन को देखने के एक नज़रिये के तौर पर बहुसंस्कृतिवाद

*'व्हाट इज़ मल्टीकल्चरलिज़्म'* शीर्षक अपने लेख में भीखू पारेख ने बहुसंस्कृतिवाद को एक दार्शनिक सम्प्रदाय या कार्यक्रमोन्मुख राजनीतिक सिद्धान्त मानने की बजाय मानव जीवन को देखने का एक तरीका या नज़रिया बताया है। वे मानते हैं कि बहुसंस्कृतिवादी नज़रिया तीन महत्वपूर्ण और परस्पर पूरक अन्तर्दृष्टियों से मिलकर बना है। पहला यह कि हर मनुष्य की जड़ें अपनी संस्कृति में धँसी होती हैं, इस मायने में कि वे एक ऐसी दुनिया में ही पलते-बढ़ते और जीते हैं जो सांस्कृतिक रूप से गढ़ी गई होती है। क्या सार्थक है और क्या निरर्थक, क्या महत्वपूर्ण है और क्या महत्वहीन – इसके बारे में उन्हें अपनी संस्कृति से जो समझ मिलती है, उसके अनुरूप ही वे अपने जीवन और सामाजिक सम्बन्धों को व्यवस्थित करते हैं। इसका यह मतलब कतई नहीं है कि कोई व्यक्ति अपनी संस्कृति द्वारा दिये गये सोच-विचार से बाहर निकल ही नहीं सकता/ती और उसकी मूल्य-व्यवस्था को आलोचनात्मक तरीके से देख ही नहीं सकता/ती। इसका मतलब बस इतना है कि वह अपनी संस्कृति के कुछ प्रभावों का अतिक्रमण तो कर सकता/ती है, लेकिन सभी का नहीं।

दो, अच्छा जीवन किसे कहते हैं और जीवन को कैसा होना चाहिए, इसके बारे में अलग-अलग संस्कृतियाँ अलग-अलग तरह की मान्यताएँ रखती हैं। चूंकि इनमें से प्रत्येक व्यवस्था मानवीय क्षमताओं, संभावनाओं और भावनाओं के एक सीमित दायरे के बोध पर ही टिकी होती है तथा मानवीय अस्तित्व की सम्पूर्णता के एक अंश को ही अपनी ज़द में ले पाती है, इसलिए उसे अन्य संस्कृतियों की ज़रूरत होती है जो उसे अपने आप को बेहतर तरीके से समझने, अपने बौद्धिक और नैतिक क्षितिज को विस्तृत करने, अपनी कल्पना को विस्तार देने तथा स्वयं को ही परम सत्य समझने के सहज लोभ से बचाने में मददगार हों। इसका यह मतलब नहीं कि सिर्फ़ अपनी संस्कृति के दायरे में रह कर एक अच्छे जीवन का निर्वाह असम्भव है। इसका मतलब इतना भर है कि दूसरी संस्कृतियों के सम्पर्क से हमारी जीवन-पद्धति अधिक समृद्ध हो सकती है और यह भी कि आज की अधिक गतिशील दुनिया में अधिकांश लोगों के लिए अपनी संस्कृति में सिमटी हुई ज़िंदगी लगभग नामुमकिन हो गई है।

तीन, हर संस्कृति आंतरिक रूप से बहुलतामूलक होती है और उसके भीतर लगातार भिन्न-भिन्न परम्पराओं के बीच संवाद चलता रहता है। संस्कृतियां सचेत या अचेत रूप से एक-दूसरे के साथ अन्तर्क्रिया करते हुए विकसित होती हैं। इसीलिए वे अपने उद्‌भव और अपनी बनावट में कम-से-कम आंशिक रूप से बहुसांस्कृतिक होती हैं। कोई भी संस्कृति पूरी तरह 'विशुद्ध' नहीं होती और उसके अंदर दूसरी संस्कृतियों के अंश अवश्य होते हैं।

इसी से जुड़ी हुई बात यह है कि जो संस्कृति अपने अंदर की बहुलताओं के प्रति सकारात्मक रुख नहीं अपनाती, उसका रुख दूसरी संस्कृतियों के प्रति भी सकारात्मक नहीं होता। 'कोई संस्कृति बाहरी विभेदों के प्रति तब तक सहज नहीं हो सकती, जब तक कि वह अपने आंतरिक विभेदों के प्रति सहज न हो।'

भीखू पारेख के अनुसार, इन तीन अन्तर्दृष्टियों से, बहुसंस्कृतिवाद का पूरा नज़रिया निर्मित होता है। इन्हें वे परस्पर पूरक अन्तर्दृष्टियाँ मानते हैं। उनके अनुसार, जब हम इन अन्तर्दृष्टियों के मेल से बनी जगह पर खड़े होकर दुनिया को देखते हैं, तो 'अपने तथा दूसरों के प्रति हमारा रवैया बहुत बदल जाता है। कोई ख़ास संस्था या सोचने और जीने का कोई ख़ास तरीका ही सबसे दुरुस्त है या मानवीय प्रकृति की ज़रूरतों के हिसाब से है, इस तरह के दावे असंगत और फालतू लगने लगते हैं। कारण, यह हमारे इस सुविचारित विश्वास के खिलाफ़ जाता है कि विचार और जीवन की सारी पद्धतियां अपने-आप में सीमित हैं और मानवीय अस्तित्व की समृद्धि, जटिलता तथा विराटता के पूरे दायरे को अपने में समेट नहीं सकतीं। हम किसी संस्कृति के एकरैखीकरण की और उस पर एकनिष्ठ अस्मिता थोपने की कोशिशों के प्रति सहज ही संदेहशील हो जाते हैं, क्योंकि हम इस बात से अच्छी तरह परिचित हैं कि हर संस्कृति आंतरिक रूप से बहुलतामूलक तथा विभेदमूलक होती है। साथ ही, हम ऐसी तमाम कोशिशों के प्रति भी संदेहशील होते हैं जो उसे अपने ही भीतर से बनने-पनपने वाली विशुद्ध संस्कृति के रूप में पेश करना चाहती हैं, क्योंकि हम यह महसूस करते हैं कि सभी संस्कृतियां दूसरों के साथ अन्तःक्रिया के बीच से, उनका प्रभाव ग्रहण करते हुए जन्म लेती हैं तथा बृहत्तर आर्थिक, राजनीतिक एवं अन्य शक्तियों द्वारा आकार पाती हैं। यह विश्वास हर तरह की केन्द्रीयता – अफ्रोकेन्द्रीयता, यूरोकेन्द्रीयता, इंडोकेन्द्रीयता, साइनोकेन्द्रीयता इत्यादि – के आधार को ध्वस्त कर देता है। (यही केन्द्रीयतावादी विचार हैं जो) सम्बद्ध संस्कृति के इतिहास को दूसरी संस्कृतियों के इतिहास से काट देते हैं और अपनी उपलब्धियों का पूरा श्रेय अपनी विशिष्ट प्रतिभा को ही देते हैं।'

भीखू पारेख की इन बातों को आसान शब्दों में रखें, तो बहुसंस्कृतिवाद एक दृष्टिकोण है जो संस्कृति के सवाल पर हमारे भीतर एक तरह का खुलापन लाता है। हम अपनी संस्कृति समेत तमाम संस्कृतियों के बीच से किसी एक को सर्वोत्कृष्ट मानने का मुग़ालता नहीं पालते, यह मानते हैं कि सभी संस्कृतियां आपसी मेलजोल से ही विकसित हुई हैं और आगे भी अपने-अपने सीमित दायरों में रह कर वे वैविध्यपूर्ण मानवीय अस्तित्व की सम्पूर्णता का साक्षात्कार व आस्वादन नहीं कर सकती हैं। इसके साथ ही हम दूसरों की सांस्कृतिक विशिष्टताओं के प्रति उदार रवैया अपनाते हैं, जिसमें यह निहित है कि कोई एक मूल्य-व्यवस्था या जीवन-पद्धति ही वैध नहीं है, न ही कोई दूसरी निकृष्ट या अनुचित है। इस तरह बहुसंस्कृतिवादी दृष्टिकोण हमारे भीतर एकरूपता के विरुद्ध विविधता के प्रति रुझान पैदा करता है। हम जिन मूल्यों-मान्यताओं के बीच विकसित हुए हैं, उन्हें भूल कर किसी

नए सांस्कृतिक मिश्रण को भले ही पूरी तरह अपना न पाएँ, हमारी ग्रहणशीलता अवश्य बढ़ती है और दुराग्रह पीछे छूट जाता है।

## 4.4 पक्ष और विपक्ष

बहुसंस्कृतिवाद कोई निर्विवाद विचार नहीं है। आज अगर कई राष्ट्र इसे राजकीय नीति के तौर पर स्वीकार करते हैं और अलग-अलग सांस्कृतिक पहचानों की विशिष्टता को मान्यता देते हैं, तो दूसरी ओर कई हल्कों में कई कोणों से इसका विरोध भी किया जाता है। विरोध करने वाले कई विचारक इसके बुनियादी विचार का ही विरोध करते हैं, जबकि कई अन्य इसके बलाघात को बदलने की सिफ़ारिश करते हुए उदार बहुसंस्कृतिवाद की जगह आलोचनात्मक बहुसंस्कृतिवाद की प्रस्तावना करते हैं। इन दोनों को हम बहुसंस्कृतिवाद के प्रचलित स्वरूप के विपक्ष के तौर पर ही देखेंगे।

### 4.4.1 बहुसंस्कृतिवाद के पक्ष में तर्क

पीछे बहुसंस्कृतिवाद का आशय समझाते हुए जो बातें कही गईं हैं, वे इसके पक्ष में दिए जाने वाले तर्कों का ही सार हैं। हम जानते हैं कि इतिहास के पिछले सभी युगों के मुकाबले मौजूदा भूमण्डलीकरण के दौर में संस्कृतियों की क्षेत्रीय हदबंदी सबसे अधिक टूटी है। किसी भी स्थान की आबादी में अलग-अलग सांस्कृतिक समूहों का प्रतिनिधित्व अभूतपूर्व तरीके से बढ़ा है। इसके साथ-साथ लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों को लेकर एक अलग तरह की जागरूकता का माहौल भी निर्मित किया है। इसलिए आज वस्तुगत परिस्थितियों एवं आम वैचारिक रुझान, दोनों को देखते हुए इस बात की आवश्यकता महसूस की जा रही है कि समाज में रहने वाले भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक समूहों को अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने की इजाज़त दी जाए। किसी ख़ास संस्कृति को समाज-विशेष की मुख्यधारा मानना, उसके इतिहास के आलोक में ही पूरे समाज के इतिहास को प्रस्तुत करना और दूसरों को दोयम दर्जे पर रखना या उनके मूल्यों-मान्यताओं-रीति-रिवाजों को वैधता न देना – यह सामाजिक सद्भाव के लिए घातक है। इसीलिए बहुसंस्कृतिवाद के समर्थक इसे एक बेहतर व्यवस्था के रूप में देखते हैं जो लोगों को अपनी जड़ों के साथ जुड़ कर जीने का खुला अवसर मुहैया कराती है और इस क्रम में दूसरों के प्रति भी अधिक सहिष्णु बनाती है। वे मानते हैं कि आज तक इतिहास के लेखन में भी वर्चस्वशाली समूहों के योगदान को बढ़ा-चढ़ा कर तथा अल्पसंख्यक समूहों के योगदान को कमतर करके दिखलाने की प्रवृत्ति रही है। बहुसंस्कृतिवाद इसे नकारते हुए कई तरह के इतिहासों की माँग करता है और इसीलिए यह लगातार अधिक घुलती-मिलती हुई दुनिया में सबसे कारगर विचार एवं नीति है।

### 4.4.2 बहुसंस्कृतिवाद के विपक्ष में तर्क

संकीर्णतावादी विचारकों से लेकर वाम-रैडिकल बुद्धिजीवियों तक ने अपने-अपने तरीके से बहुसंस्कृतिवाद का विरोध किया है या फिर इसके प्रचलित स्वरूप पर सवाल उठाए हैं। इसका सिरे से विरोध करने वाले विचारकों का मानना है कि बहुसंस्कृतिवाद राष्ट्रीय एकता और सामाजिक एकजुटता के लिए घातक है। वे एकल सांस्कृतिक पहचान को राष्ट्रीय एकता की बुनियाद मानते हैं, जिसका मतलब यह है कि भले ही कई अलग-अलग धर्मों-संस्कृतियों-भाषाओं को किसी राष्ट्र-विशेष की सीमा के भीतर जगह मिली हुई हो, वस्तुतः एक धर्म-संस्कृति-भाषा ही उस राष्ट्र के वजूद का आधार होती है। उसकी इस हैसियत की अनदेखी कर जब हम सभी तरह की सांस्कृतिक पहचानों को उसके बराबर ही स्थान देने लगते हैं, तब राष्ट्र की राष्ट्र के रूप में पहचान ख़तरे में पड़ जाती है। फिर वह एक अजीब-सा जमघट बन जाता है, जिसके एकजुट बने रहने का कोई ठोस कारण वहाँ उपस्थित नहीं रहता। इस तरह बहुसंस्कृतिवाद असल में अलगाववाद को बढ़ावा देता है। इस धारणा को व्यक्त करते हुए 1988 में आस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री जॉन हावर्ड ने कहा था, 'बहुसंस्कृतिवाद के साथ मेरी बहस यह नहीं है कि यह विविधता के प्रति आदर और सहिष्णुता प्रदर्शित करता है, बल्कि यह कि यह कई तरीकों से विभाजन पर बल देता है।' प्रायः सभी देशों में बहुसंस्कृतिवाद के खिलाफ़ इस तरह के तर्क बड़े पैमाने पर उठाए जाते रहे हैं। जिन भीखू पारेख का पीछे हवाला दिया जा चुका है, उनकी अध्यक्षता में बने कमीशन की रिपोर्ट (उसे पारेख रिपोर्ट भी कहते हैं) का ब्रिटेन में ख़ासा विरोध हुआ और लोगों ने कहा कि ब्रिटेन को 'समुदायों का समुदाय' (कम्युनिटी ऑफ़ कम्युनिटीज़) बताने वाली यह रिपोर्ट दरअसल हमारे समाज को टुकड़े-टुकड़े कर देने (बाल्कनाइज़ेशन) का

नुस्ख़ा है। इसी तरह अमेरिका में भी क्लिंटन प्रशासन की बहुसंस्कृतिवादी नीतियों के खिलाफ़ कई तरह के तर्क-कुतर्क दिए गए। सैम्युअल पी. हंटिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *'द क्लैश ऑफ़ सिविलाइजेंशंस एंड द रीमेकिंग ऑफ़ वर्ल्ड ऑर्डर'* (1997) में इस बात पर विशेष बल दिया कि अमेरिका को बहुसांस्कृतिक राष्ट्र बनाने की कोशिशें बहुत ख़तरनाक हैं। वे ऐसा क्यों मानते हैं, इसे समझने के लिए उनकी मूल स्थापना को सरसरी तौर पर देखना ज़रूरी है।

हंटिंग्टन का मानना है कि सोवियत संघ के विघटन के बाद से विश्व में सांस्कृतिक कारणों से होने वाली लड़ाइयों की संख्या बहुत बढ़ी है और उन लड़ाइयों में सांस्कृतिक आधारों पर गुटबंदी की प्रवृत्तित भी स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है। किसी भी संस्कृति के बृहत्तम रूप को सभ्यता कहते हैं। संस्कृति के इस बृहत्तम रूप की अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भूमिका अब बहुत महत्वूपर्ण होती जा रही है, क्योंकि भूमण्डलीय राजनीति में सभ्यता के आधार पर देशों के एकजुट होने, युद्ध की परिस्थितियों में लामबंद होने का रुझान साफ़-साफ़ दिखलाई पड़ रहा है। इस तरह आगामी विश्वयुद्ध अगर होगा तो वह सभ्यताओं के बीच का युद्ध होगा। वह द्वितीय विश्वयुद्ध की तरह वैचारिक आधार पर बंटे हुए गुटों (फासीवादी और फासीवादविरोधी) के बीच का युद्ध नहीं होगा। अभी सात या आठ सभ्यताएं ऐसी हैं, जिनका अस्तित्व आने वाले समय के लिए निर्णायक है – पश्चिमी, आर्थोडॉक्स स्लाव, कन्फ्यूशियाई, जापानी, इस्लामी, हिंदू, लातिन अमरीकी और सम्भवतः अफ्रीकी। अमेरिका के बारे में हंटिंग्टन कहते हैं कि वह मूलतः पश्चिमी ईसाइयत वाली सभ्यता का हिस्सा है, लेकिन इस रूप में अपनी पहचान करने की बजाय वह बहुसांस्कृतिकता के नाम पर पहचानविहीन बनता जा रहा है। यह ख़तरनाक स्थिति है, क्योंकि सभ्यता विशेष के भीतर अपनी सदस्यता को सुनिश्चित करना आज के विश्व में अपने वजूद को सुरक्षित करने के लिए ज़रूरी है। साभ्यतिक पहचान को धुंधला करके अमेरिका अपने साथ एकजुट हो पाने वाली ताक़तों से अपने को अलग-थलग कर रहा है। इससे वह पश्चिम बनाम अन्य सभ्यताओं, विशेषतः इस्लाम, के द्वंद्व में अन्य सभ्यताओं के हमले का निशाना बनने से तो नहीं ही बच पाएगा, उल्टे उस हमले का निशाना बनते हुए वह अपनी सभ्यता के अन्य देशों के सामरिक सहयोग से भी वंचित होगा। अकेला पड़ कर उसे दूसरी सभ्यताओं के सम्मिलित कोप और विशेषतः इस्लाम के हिंसक हमलों का शिकार बनते देर नहीं लगेगी। इसलिए अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के विश्लेषक और रक्षा सलाहकार के तौर पर हंटिंग्टन ने अमेरिका को यह मशवरा दिया है कि वह बहुसंस्कृतिवाद के ख़तरनाक मुहावरे से बाहर निकले और पश्चिमी ईसाइयत की साभ्यतिक-सांस्कृतिक मुख्यधारा को अपनी राष्ट्रीयता के आधार के रूप में मान्यता दे।

वामपंथी विचारकों ने भिन्न कोण से बहुसंस्कृतिवाद की आलोचना की है। राजकीय नीति के तौर पर प्रचलित बहुसंस्कृतिवाद को वे एक ऐसा सिद्धान्त मानते हैं जो नस्लवाद या गोरों के वर्चस्व के खिलाफ़ परिवर्तनकारी संघर्ष चलाने की बजाय विविधता का दिखावटी जश्न मनाता है। इस नीति के तहत राज्य की ओर से जातीय संस्कृतियों से सम्बन्धित मेलों, प्रदर्शनियों आदि का आयोजन होता है और वास्तविक समानता के लिए चलने वाले किसी संघर्ष की संभावना को दबाता हुआ यह संस्कृति को दिखावे, उपभोग तथा उत्सव की वस्तु में बदल देता है। इसीलिए ये विचारक प्रचलित उदार बहुसंस्कृतिवाद की जगह आलोचनात्मक बहुसंस्कृतिवाद की सिफ़ारिश करते हैं, जिसमें सांस्कृतिक आलोचना की गुंजाइश हो और सामाजिक न्याय के प्रति गहरी प्रतिबद्धता। आलोचनात्मक बहुसंस्कृतिवाद द्वारा ही यह भी सम्भव है कि किसी सांस्कृतिक समूह को अपने तौर-तरीकों और मूल्यों-मान्यताओं पर चलने के लिए दी गई छूट उस समूह के भीतर के किसी उपसमूह या कुछ व्यक्तियों के सार्वभौम मानवाधिकारों के उल्लंघन का कारण न बन जाए। बहुसंस्कृतिवाद के प्रचलित स्वरूप के साथ यह एक बहुत बड़ा सवाल जुड़ा हुआ है। वह अलग-अलग संस्कृतियों के बीच की विविधताओं को तो बहुत महत्व देता है, लेकिन एक संस्कृति के भीतर की विविधताओं के प्रति वह संवेदनशील नहीं है। इसके चलते अगर किसी संस्कृति के तौर-तरीके अपने-आप में बहुत गहरे स्तर पर गैरलोकतांत्रिक हैं, तो उसे छूट देकर हम सम्बन्धों की लोकतांत्रिकता के सार्वभौम आधुनिक मूल्य को ताख़ पर रख देते हैं। सूज़न मोलर ओकिन ने इस पहलू पर अपने लेख *'इज़ मल्टीकल्चरलिज़्म बैड फ़ॉर वीमेन?'* में बहुत विस्तार से विचार किया है।

ओकिन ने इस सवाल के साथ अपने लेख की शुरुआत की है कि जब अल्पसंख्यक संस्कृतियों या धर्मों की दावेदारी और लैंगिक समानता की धारणा, जो कि उदारवादी राज्यों द्वारा कम-से-कम औपचारिक स्तर पर मान्यताप्राप्त है,

के बीच टकराव हो जाए, तब क्या किया जाना चाहिए? उनका मानना है कि अल्पसंख्यक संस्कृतियों के समूह-अधिकारों को लेकर बहुसंस्कृतिवाद की जो प्रतिबद्धता है, वह स्त्रीवाद या स्त्री के मानव-अधिकारों की धारणा से उलट पड़ती है। सभी संस्कृतियों में विवाह के नियम, स्त्री के अधिकार और दायित्व की धारणा, परिवार के भीतर सदस्यों के सम्बन्ध की शक्ति-संरचना इत्यादि पर ग़ौर करें, तो पता चलेगा कि हर जगह स्त्री को नियंत्रण में रखने, उसे पूरी तरह पुरुष वर्चस्व के अधीन रखने के प्रयोजन से ही सारी चीज़ें नियोजित हैं। इसका मतलब यह कि बहुसंस्कृतिवाद के नाम पर स्त्री को आधुनिक सेकुलर राज्य द्वारा प्राप्त कानूनी समानता से वंचित कर पारम्परिक गुलामी की ओर वापस धकेला जा सकता है। ओकिन लिखती हैं: 'उदारवादी राज्य के भीतर अल्पसंख्यकों के समूह-अधिकार की वकालत करने वालों ने समूह-अधिकारों की इस सरल-सी आलोचना को कम-से-कम दो कारणों से समुचित तरीके से सम्बोधित नहीं किया है। पहला, वे सांस्कृतिक समूहों को इकहरे रूप में देखते हैं। इसका मतलब यह कि समूहों के भीतर मौजूद फ़र्कों की तुलना में वे समूहों के बीच मौजूद फ़र्कों पर ज़्यादा ध्यान देते हैं। ख़ास तौर से वे इस तथ्य पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते या बहुत कम देते हैं कि अल्पसंख्यक सांस्कृतिक समूहों के भीतर औरत और मर्द के बीच ताक़त और लाभ का बहुत बड़ा फ़ासला होता है। दूसरे, समूह-अधिकारों के प्रवक्ता निजता के दायरे की ओर भी बिल्कुल ध्यान नहीं देते या बहुत कम देते हैं। समूह-अधिकार के पक्ष में आने वाले कुछ सर्वोत्तम उदारवादी तर्कों में यह कहा गया है कि व्यक्ति को अपनी एक संस्कृति की ज़रूरत होती है और ऐसी संस्कृति के अंदर ही लोग आत्मसम्मान का बोध विकसित कर सकते हैं या यह तय करने की क्षमता हासिल कर सकते हैं कि उनके लिए किस तरह का जीवन उत्तम है। लेकिन ये तर्क दो चीज़ों को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर देते हैं – एक, वे भिन्न-भिन्न भूमिकाएँ जिनकी एक सांस्कृतिक समूह अपने सदस्यों से अपेक्षा रखता है, और दो, वह सन्दर्भ जिसमें व्यक्तियों का आत्मबोध और उनकी क्षमताएँ पहले-पहल आकार पाती हैं और जिसमें संस्कृति सबसे पहले उस तक हस्तान्तरित होती है, यानी घरेलू या पारिवारिक जीवन का दायरा।'

ग़ौर करें तो ओकिन की यह आलोचना (निजता के दायरे की ओर बिल्कुल ध्यान न देना) भीखू पारेख के विश्लेषण की कमियों की ओर ही संकेत है। जिन दो चीज़ों के नज़रअंदाज़ किए जाने की वह चर्चा करती है, वे सचमुच मायने रखती हैं। अगर एक सांस्कृतिक समूह अपनी स्त्रियों से कुशल और आज्ञाकारी गृहिणी की भूमिका निभाने की अपेक्षा रखता है, तो क्या समूह-अधिकार के नाम पर इस मान्यता को स्त्री-विशेष की इच्छा-अनिच्छा से परे बाध्यकारी माना जाना चाहिए? ऐसे में तो उन खाप पंचायतों के फ़ैसलों का भी सम्मान करना होगा जो सगोत्रीय प्रेमियों के विवाह करने पर उन्हें मृत्युदण्ड दे देती हैं!

दरअसल, बिल्कुल गैरआलोचनात्मक तरीके से बहुसंस्कृतिवाद को लागू करना उसे सांस्कृतिक सापेक्षतावाद की ओर ले जाना है। सांस्कृतिक सापेक्षतावाद का मतलब है, किसी भी मूल्य को सार्वभौम न मान कर हर संस्कृति के अपने-अपने मूल्य-मान्यताओं को वैधता देना। यह अतिवाद, ज़ाहिर है, किसी संस्कृति के भीतर मौजूद सभी तरह के शक्ति-सम्बन्धों को जायज़ ठहरायेगा। अगर हिन्दू संस्कृति में दलित के साथ छुआछूत बरता जाता है और स्त्री को अवस्थानुसार पिता, पति और पुत्र की अधीनस्थ का दर्जा दिया जाता है, तो यह उस सांस्कृतिक सापेक्षतावाद के हिसाब से दुरुस्त है। बहुसंस्कृतिवाद जहां इस छोर तक पहुँच जाए, वहां वह त्याज्य है। उसमें मनुष्य-मनुष्य की बराबरी, व्यक्ति का सम्मान जैसे सार्वभौम मूल्यों के लिए जगह होनी चाहिए और उनके अनुसार संस्कृति-विशेष की आलोचना की गुंजाइश भी होनी चाहिए। ऐसी आलोचनात्मक क्षमता से संपन्न बहुसंस्कृतिवाद संस्कृतियों की बीच के विभेदों के प्रति जितना सजग होगा, उतना ही संस्कृति के भीतर के विभेदों के प्रति भी। ऐसा बहुसंस्कृतिवाद अगर यह सुनिश्चित करेगा कि किसी राष्ट्र की सीमाओं में किसी एक संस्कृति के वर्चस्व को मान्यता देकर औरों को दोयम दर्जा न दिया जाए, तो साथ ही यह भी सुनिश्चित करेगा कि सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के नाम पर मानवाधिकारों का हनन न हो।

## 4.5 बहुसांस्कृतिक समाजों में अनुवाद एवं अनुवादक की भूमिका

मौजूदा भूमण्डलीय परिदृश्य में, जहां लगभग सभी राष्ट्रों के भीतर आप्रवासन और उत्प्रवासन बढ़ता जा रहा है तथा अलग-अलग जीवन-मूल्य और जीवन-पद्धतियाँ एक-दूसरे के निकट बसने को बाध्य हैं, अनुवाद की उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ गई है। और इसीलिए अनुवादक की भूमिका आज बेहद उत्तरदायित्वपूर्ण है। जब भिन्न-भिन्न

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने वाले लोग एक ही समाज में रह रहे हों, तब अनुवाद कार्य दो स्तरों पर अत्यन्त उपयोगी ठहरता है – 1. प्रशासनिक स्तर पर, जहां बहुसंस्कृतिवाद की नीति के चलते कई राजकीय दस्तावेज़ों को अलग-अलग भाषाओं में उपलब्ध कराना अपेक्षित होता है, और 2. सामाजिक स्तर पर, जहाँ संस्कृतियों के बीच के आदान-प्रदान तथा अन्तरंग परिचय के एक साधन के तौर पर अनुवाद की भूमिका सामने आती है।

इनमें से दूसरा बिन्दु थोड़ा विचारणीय है। बहुसंस्कृतिवाद की यह आधारभूत समझ, कि किसी समाज में विभिन्न संस्कृतियों का स्वस्थ सहअस्तित्व हो और वे अपनी-अपनी विशिष्टता को कायम रखते हुए दूसरे के प्रति सहिष्णु एवं उसकी अच्छाइयों के प्रति सजग हों, अनुवाद कार्य के लिए एक विराट क्षेत्र और स्पष्ट दिशा उपलब्ध कराने वाली समझ है। अपरिचय भय, आशंका और संदेह का कारण बनता है। समुदायों के बीच मौजूद इस तरह के भय और संदेह को दूर करने के लिए उनका आपस में गहरा परिचय कराना ज़रूरी है। इसके लिए कई और चीज़ों के साथ-साथ साहित्यिक, वैचारिक एवं अन्य तरह के पाठों का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद बड़े पैमाने पर होना चाहिए। इससे आपसी अजनबियत घटती है, दूसरों के जीने-सोचने-बरतने के तरीकों का परिचय मिलता है और हर तौर-तरीके की अपने-अपने स्तर पर वैधता धीरे-धीरे रिसती हुई हमारे भीतर जगह बनाने लगती है। मिसाल के लिए, लैटिन अमरीकी साहित्य को अंग्रेज़ी या हिन्दी के माध्यम से पढ़ कर हम वहां के आचार-व्यवहार के बारे में जो कुछ जान पाते हैं, वह लैटिन अमरीकी समाजों को हमारे लिए अजनबी नहीं रहने देता और इस तरह हमें उनके प्रति सहज बनाता है। ऐसा परिचय न हो तो रिश्ते में असहजता बनी रहती है, जो समुदायों के बीच की अनेकानेक ग़लतफ़हमियों का कारण बनती है। स्पेन के लास पामास विश्वविद्यालय में अध्यापन करने वाली इसाबेल पासकुआ ने बहुसांस्कृतिक बाल-साहित्य के अनुवाद से सम्बन्धित अपनी परियोजना के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा है कि वे नहीं चाहतीं कि जूली लॉसन के 'व्हाइट जेड टाइगर' (1993) में दो बच्चों को जिस विपरीत स्थिति का सामना करना पड़ता है, वह और बच्चों के साथ हो। उन्होंने 'व्हाइट जेड टाइगर' का यह अंश उद्धृत किया है:

*जास्मीन अपने और अपने दोस्त कियुंग के बारे में की गई नस्ली छींटाकशी से बिफरी हुई थी। उसने अपने पर काबू रखने की जद्दोज़हद करते हुए एक गहरी साँस ली। वह उन्हें फटकारना चाहती थी, अपने शब्दों की ताक़त से उन्हें परास्त कर देना चाहती थी। लेकिन उसके भीतर गुस्से से ज़्यादा कुछ सुलग रहा था।*

*-'मैं जानता हूं, यह सुन कर चोट पहुँचती है।' लोगों के जाने के बाद कियुंग ने कहा।*

*-'लेकिन वे इस तरह की बातें क्यों करते हैं? मुझे समझ नहीं आता। वे तो हमें जानते तक नहीं।'*

*-'इसीलिए। वे ऐसी बातें इसीलिए करते हैं कि वे हमें जानते नहीं।'*

यह अंश समुदायों के आपसी परिचय की ज़रूरत को बहुत सफ़ाई से रेखांकित करता है। निस्संदेह, इस ज़रूरत को पूरा करने में अनुवाद की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकती है।

अनुवाद के प्रसंग में बहुसांस्कृतिकता से जुड़ा हुआ एक और पहलू यह है कि अनुवादक को जब तक स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा से जुड़ी हुई संस्कृतियों का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं होगा, वह अच्छा/अच्छी अनुवादक नहीं हो सकता/सकती। स्रोत भाषा में उपस्थित पाठ को उसके सांस्कृतिक सन्दर्भों के साथ समझ कर (डिकोड करके) लक्ष्य भाषाभाषी समाज के अनुरूप उसके लिए नया कूट-निर्माण (एनकोडिंग) करना अनुवादक का काम है। सांस्कृतिक सन्दर्भों को अगर वह स्वयं नहीं समझ पा रहा/रही, तो ज़ाहिर है, वह लक्ष्य भाषा में भी उसे स्पष्ट नहीं कर पाएगा/पाएगी। इसी तरह सांस्कृतिक सन्दर्भों को समझते हुए भी अगर अनुवादक के पास लक्ष्य भाषाभाषी समाज की संस्कृति के सम्बन्ध में इतनी गहरी जानकारी नहीं है कि वह उसमें उन सांस्कृतिक सन्दर्भों के योग्य समतुल्य (इक्वीवेलेंट) खोज सके, तो ऐसी स्थिति में भी वह अच्छा अनुवाद नहीं कर पाएगा/पाएगी। आशय यह कि अच्छे अनुवादक सिर्फ़ बहुभाषाविद् या कम-से-कम द्विभाषाविद् ही नहीं होते, वे बहुसांस्कृतिक मिज़ाज के धनी भी होते हैं। वे सिर्फ़ भाषा से नहीं, बल्कि संस्कृति से गहरे स्तर पर सरोकार रखने वाले जिज्ञासु होते हैं। ऐसा जिज्ञासु होने के चलते ही वे पाठ के मर्म को सही परिप्रेक्ष्य में समझ पाते हैं और उसे दूसरे भाषाभाषी समुदाय तक पहुँचाने में सेतु का काम करते हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि अच्छे अनुवाद के लिए बहुसंस्कृतिवाद का यह आधारभूत विश्वास एक तरह की चालक शक्ति के रूप में उपस्थित रहता है और रहना चाहिए कि सांस्कृतिक विविधता किसी

भी समाज के लिए लाभदायी है और इसके लिए समाज में ऐसा उपयुक्त वातावरण तैयार करना ज़रूरी है जिसमें भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ एक-दूसरे को आदर, महत्व और सहारा देते हुए फूलें-फलें।

## 4.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि बहुसंस्कृतिवाद की चर्चा पश्चिमी समाजों में 1970 के दशक में आरम्भ हुई। धीरे-धीरे कई देशों की सरकारों ने इसे राजकीय नीति के तौर पर स्वीकार किया, जिसका मतलब यह था कि वहाँ बसे हुए सभी तरह के सांस्कृतिक समूहों के विश्वासों, मूल्य-मान्यताओं, रीति-रिवाजों इत्यादि को राज्य के स्तर पर मान्यता प्रदान की गई और यह सुनिश्चित किया गया कि कानून से लेकर रोज़मर्रा के सामाजिक जीवन तक, किसी भी स्तर पर उनका तिरस्कार या स्थगन न हो। बहुसंस्कृतिवाद को एक जीवन-दृष्टि के रूप में प्रस्तावित करने वाले विचारक ये मानते हैं कि हर मनुष्य का व्यक्तित्व अपनी संस्कृति के द्वारा ही गढ़ा जाता है, इसलिए उसे अपनी संस्कृति द्वारा प्रदत्त जीवन-पद्धति के साथ जीने का अधिकार होना चाहिए। साथ ही, चूंकि हर संस्कृति अपने-आप में कई दृष्टियों से अधूरी है, इसलिए एक समाज में जितना ही अधिक सांस्कृतिक वैविध्य होता है, उतना ही अधिक वह समाज सांस्कृतिक आदान-प्रदान द्वारा समृद्ध होता जाता है।

बहुसंस्कृतिवाद की आलोचना करने वालों ने कहीं तो इसे राष्ट्र की एकता-अखण्डता के लिए घातक बता कर इससे बचने की सलाह दी है और कहीं इस बात की ओर उचित ही ध्यान दिलाया है कि गैरआलोचनात्मक तरीके से सांस्कृतिक विशिष्टताओं को बनाए रखने पर बल देना कई बार मानवाधिकारों के खिलाफ़ जा सकता है। इसी दृष्टि से आलोचनात्मक बहुसंस्कृतिवाद की बात चर्चा में आती रही है।

बहुसंस्कृतिवाद की आधारभूत मान्यताएँ अनुवाद कार्य के लिए भी उपयोगी हैं। अनुवादक संस्कृतियों के बीच सेतु का काम करते हैं। वे बहुसंस्कृतिवादी दृष्टि से प्रेरणा भी पाते हैं और बहुसंस्कृतिवादी उद्देश्यों को पूरा करने का साधन भी बनते हैं, क्योंकि अनुवाद सिर्फ़ भाषान्तर नहीं है।

अगली इकाई में आप भारतीय सन्दर्भ में बहुसांस्कृतिकता के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

## 4.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) बहुसंस्कृतिवाद और समांगीकरण की नीतियाँ मिलती-जुलती हैं या कि परस्पर विरुद्ध हैं? स्पष्ट कीजिए।

2) जीवन को देखने के बहुसंस्कृतिवादी नज़रिये का निर्माण किन अर्न्तदृष्टियों से मिलकर हुआ है?

3) बहुसंस्कृतिवाद की आलोचना का संकीर्ण दृष्टिकोण किसे कहा जा सकता है?

4) विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के बीच परिचय बढ़ाना सामाजिक सद्भाव के लिए कैसे आवश्यक है और इसमें अनुवाद की क्या भूमिका हो सकती है?

5) 'किसी भी बहुसांस्कृतिक समाज के लिए अनुवाद अनिवार्य है।' कथन की पुष्टि कीजिए।

## 1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें


- भीखू पारेख के लेख के लिए देखें: *सेमिनार,* अंक 484, दिसम्बर 1999. यह इंटरनेट पर भी है: http://www.india-seminar.com/1999/484.20/parekh.htm
- ओकिन के लेख के लिए http://www.bostonrevie w.net/BR22.5/okin.html
- किमिल्का, विल, 1995, *मल्टीकल्चरल सिटिजनशिपः ए लिबरल थियरी ऑफ़ माइनॉरिटी राइट्स,* ऑक्सफोर्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, http:///n.wikipedia.org/

# इकाई 5 भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारतीय बहुसांस्कृतिकता

## इकाई की रूपरेखा


5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारतीय सन्दर्भ में बहुसांस्कृतिकता

- 5.2.1 इतिहास एवं नृजातीय वर्णन
- 5.2.2 भाषा
- 5.2.3 सांस्कृतिक अस्मिता
- 5.2.4 भाषिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान

5.3 भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारतीय बहुसांस्कृतिकता

- 5.3.1 भूमण्डलीय परिप्रेक्ष्य में भारत की स्थिति
- 5.3.2 भाषा, संस्कृति एवं अनुवाद की भूमिका
- 5.3.3 उत्तर-औपनिवेशिक भारत में बहुसांस्कृतिकता
- 5.3.4 भूमण्डलीय परिप्रेक्ष्य में बहुसांस्कृतिकता
- 5.3.5 भूमण्डलीकरण एवं सांस्कृतिक प्रसार
- 5.3.6 प्रस्तुतीकरण अस्मिता के प्रश्न : साहित्य एवं संस्कृति

5.4 सारांश

5.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

5.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें


## 5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे किः

- भारतीय सन्दर्भ में बहुसांस्कृतिकता से क्या तात्पर्य है;
- सांस्कृतिक अस्मिता से क्या आशय है;
- भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारतीय बहुसांस्कृतिकता से क्या तात्पर्य है;
- विदेशों में किस प्रकार की बहुसांस्कृतिकता है तथा उन पर उनकी क्या राय है;
- बहुसांस्कृतिकता और प्रतिनिधित्व और अस्मिता के प्रश्न का आपस में क्या सम्बन्ध है; तथा
- बहुसांस्कृतिकता के प्रचार-प्रसार में साहित्य और अनुवाद की क्या भूमिका है।

## 5.1 प्रस्तावना

बहुसांस्कृतिकता मूलतः राजनीतिक दर्शन से जुड़ा विचारों का ऐसा समूह है जो साहित्य, अनुवाद तथा सांस्कृतिक अध्ययन जैसी अध्ययन की शाखाओं के चारों ओर स्थित है, जिसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि सांस्कृतिक तथा धार्मिक विविधता पर कैसे विचार किया जाए। बहुसांस्कृतिकता 'अस्मिता की राजनीति', 'भिन्नता की राजनीति' और 'मान्यता की राजनीति' जैसी संकल्पनाओं से अभिन्न तौर पर जुड़ी हुई है। ये सभी उपेक्षित की हुई अस्मिताओं का महत्व पुनः स्थापित करने और कुछ समूहों को हाशिये पर पहुँचाने वाले चित्रण व सम्प्रेषण के मुख्य प्रतिमानों को बदलने की वचनबद्धता रखते हैं। बहुसांस्कृतिकता आर्थिक हितों और राजनीतिक शक्ति का भी एक विषय है। अपनी अल्पसंख्यक स्थिति के परिणामस्वरूप जो लोग, आर्थिक व राजनीतिक असुविधाएँ भोगते हैं, बहुसांस्कृतिकता उन्हें दूर करने की माँग करती है। भारतीय सन्दर्भ में इसे राष्ट्र की विविध वर्णीय अस्मिता से परिभाषित किया जा सकता है।

यद्यपि पिछले कुछ दशकों में बहुसांस्कृतिकता अफ्रीकी-अमेरिकी, स्त्रियों, समलैंगिकों और विकलांगों जैसे वंचित समूहों की व्यापक श्रेणी की नैतिक और राजनीतिक मांगों को निर्धारित करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य पर एक व्यापक पद है; तथापि बहुसांस्कृतिकता के अधिकांश सिद्धान्तकार सहज ही अपने तर्क नृजातीय व धार्मिक अल्पसंख्यक आप्रवासियों पर केन्द्रित करते हैं। उदाहरण के लिए यू.एस. में लैटिन लोग, पश्चिमी यूरोप में मुसलमान, कैटलैंस, बास्क, वेल्श, क्यूबेक (Quebecois) जैसे छोटे राष्ट्र और क्षेत्रीय लोग जैसे कि उत्तरी अमेरिका में मूल निवासी और न्यूजीलैण्ड में माओरी। भारत के सन्दर्भ में ये अनेक धार्मिक व सामाजिक अल्पसंख्यक समुदायों, उनके सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास और उनके जीवन, मुख्यधारा से 'अन्य' की तुलना के रूप में देखी जाती है।

बहुसांस्कृतिकता के चिन्तक यह मान लेते हैं कि केवल 'संस्कृति' और 'सांस्कृतिक समूह' ही हैं जिन्हें बहुसांस्कृतिकता के अन्तर्गत मान्यता और स्थान देना चाहिए। फिर भी बहुसांस्कृतिकता के दायरे में धर्म, भाषा, वर्ण, राष्ट्रीयता और नस्ल से सम्बन्धित दावों की एक लम्बी शृंखला आती है। संस्कृति प्रत्यक्ष रूप से एक अत्यधिक विस्तृत संकल्पना है और ये सभी श्रेणियाँ संस्कृति की संकल्पना में सम्मिलित या समीकृत की जाती हैं। भाषा और धर्म आप्रवासियों द्वारा सांस्कृतिक समायोजन की अनेक मांगों के सार में है। छोटे राष्ट्रों द्वारा की गई मूल मांगों में से एक स्वशासन का अधिकार है। बहुसांस्कृतिक विमर्श में वर्ण की बहुत सीमित भूमिका है। नस्ल-विरोध और बहुसांस्कृतिकता भिन्न किन्तु सम्बन्धित विचार हैं; जिसमें से पहला 'उत्पीड़न/अत्याचार' और अवरोध को दर्शाता है जबकि दूसरा सांस्कृतिक जीवन, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, उपलब्धियों और रुचि को।

लगभग इसी प्रकार का राजनीतिक आधिपत्य भारतीय सन्दर्भ में भी पाया जाता है। भारत में बहुसांस्कृतिकता कभी-कभी हाशिये के समाजों या समुदायों और जीवित रहने, न्याय, समानता, सम्बद्धता और कभी-कभी निरूपण के लिए भी उनके निरन्तर संघर्ष से जोड़ी जाती है। भारतीय परिदृश्य में यह तथ्य सामाजिक वर्गों, धार्मिक पदानुक्रम, सांस्कृतिक जड़ों की द्वैतता या दोहरेपन और राष्ट्र के राजनीतिक इतिहास में लोगों के योगदान से निर्धारित है। देश के विभिन्न भागों में रह रहे दलित, आदिवासी, और इसी प्रकार की अन्य श्रेणियों के लोग अपने सम्बन्धित प्रभावी वर्गों द्वारा निरन्तर हाशिये पर ढकेले जाने से अपने अधिकारों, अस्मिता, स्वतंत्रता व भारत नामक राष्ट्र से सम्बद्ध होने के भाव व उसके इतिहासलेखन में दबाए जाते रहे हैं। प्रस्तुत इकाई में हम भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारतीय बहुसांस्कृतिकता पर विस्तार से चर्चा करेंगे तथा उसके विभिन्न बिन्दुओं पर विचार करेंगे।

## 5.2 भारतीय सन्दर्भ में बहुसांस्कृतिकता

भारत अनेक भाषाओं और संस्कृतियों की भूमि है। यहां प्राचीन काल से ही भाषिक और सांस्कृतिक जड़ों की विपुल धाराएं पाई जाती हैं। भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को इसके इतिहासलेखन, पौराणिक कथाओं और सांस्कृतिक व्यवहार जैसे तत्वों के साथ जुड़ाव से निर्धारित किया जाता है। भारतीय सन्दर्भ में सांस्कृतिक अस्मिता विषमांग है और इसलिए इस सन्दर्भ में एक 'अखिल-भारतीय' संस्कृति या सांस्कृतिक अस्मिता काफी भ्रामक है। क्योंकि इस प्रकार की अस्मिता को परिभाषित करना लगभग असम्भव है। भारत की सांस्कृतिक परम्पराएँ उतनी ही विस्तृत हैं जितनी कि यहां के लोगों का इतिहास जो युगों से संजोई व संवारी गई सामाजिक व्यवस्था की प्रचुरता को दर्शाता है। विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के विभिन्न समूहों, समुदायों या कि समाजों द्वारा व्यवहार में लाई जाने वाली ये मूल्य व्यवस्थाएँ वे उपकरण हैं, जिनके माध्यम से उनकी अस्मिता तथा उनके अस्तित्व को व्याख्यायित किया जाता है। तथा वस्तुतः जो इन लोगों के जिए हुए अनुभव हैं।

लोगों के खान-पान, वेशभूषा, धार्मिक व सांस्कृतिक मान्यताएँ, सामाजिक मानदण्ड और समाज द्वारा अपनी कही व प्रयोग की जाने वाली मान्यताएँ क्षेत्रीय सीमाओं के पार फैलते बहुविध सांस्कृतिक रिवाजों के अन्तर्गत आती हैं। भारत की बहुसांस्कृतिकता मध्य उत्तरी, पूर्वोत्तर, पश्चिमी, दक्षिणी पट्टी इत्यादि क्षेत्रों जैसी विविध क्षेत्रवार भिन्नताओं या वर्गीकरणों से आती हैं। इन सभी क्षेत्रों के अपने भिन्न सांस्कृतिक रिवाज, धार्मिक विश्वास और सामाजिक नियम हैं तथा वे अनिवार्य रूप से राज्य निर्धारित भेद को नहीं मानते हैं। इसके विपरीत वे अधिकतर क्षेत्रीय सीमांकन के भेद में निष्ठा रखते हैं और उनकी जड़ें उनके पूर्वजों के इतिहास और सांस्कृतिक व पारम्परिक अतीत में हैं।

भारत की बहुसांस्कृतिक धरोहर की पहचान और उसकी अद्वितीय विशिष्टताओं का अवस्थापन लोगों के इतिहास और नृजातीय वर्णन के माध्यम से ही सम्भव है। इस तरह की पहचान निर्मित करने में भाषा भी एक निर्णायक भूमिका निभाती है। इसलिए भारतीय बहुसांस्कृतिकता का अध्ययन (इतिहास और नृजातीय वर्णन के साथ) विभिन्न समाजों की भाषिक परम्परा की छानबीन को भी सम्मिलित करता है।

भारतीय सन्दर्भ में बहुसांस्कृतिकता धार्मिक बहुलता तथा एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास लेखन नामक दो भिन्न धाराओं से प्रतिबिम्बित होती है। मुख्य रूप से हिन्द, मुसलमान, ईसाई, सिख, बौद्ध, बहाई, अहमदी, जैन, पारसी जनसंख्याओं के साथ भारत विश्व में सर्वाधिक विविध धर्मी देश है। दूसरी ओर सामाजिक-सांस्कृतिक आधार पर भारत की जनसंख्या कई श्रेणियों में आती है। ये सभी विशिष्ट सामाजिक/सांस्कृतिक/पौराणिक मूल्य-व्यवस्थाओं के समूह का व्यवहार करते हैं और उनसे ही स्वयं की पहचान करते हैं।

### 5.2.1 इतिहास एवं नृजातीय वर्णन

किसी राष्ट्र की अस्मिता से सम्बद्ध किसी अध्ययन का निर्धारण उसके इतिहास और नृजातीय वर्णन के आधार पर किया जाता है। इतिहास हमें सामाजिक-राजनीतिक विकास, सामाजिक प्रतिमानों की व्यवस्थाओं, व्यवहार, राजनीतिक शासन और लोगों के व्यापक सांस्कृतिक इतिहास के वर्णनों से बांधे रखता है। दूसरे शब्दों में नृजातीय वर्णन लोगों के विविध वर्णीय अतीत, सिद्धान्तों और मतों तक पहुँच व उनका वर्णन देता है जिनसे समुदाय अपने जन्म के आधार पर अपनी-अपनी जड़ों से सम्बद्धता के भाव से जुड़े होते हैं।

भारत में बहुसांस्कृतिकता प्रमुख रूप से इसके इतिहासलेखन और नृजातीय वर्णन का सहज गुण है। आक्रमणों और औपनिवेशिक शासन से भरे भारत के राजनीतिक इतिहास का इसके इतिहासलेखन और सांस्कृतिक अतीत निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। आज भारत की सांस्कृतिक पहचान का एक बड़ा हिस्सा भारत प्रदेश के दो मुख्य औपनिवेशिक आक्रमणों – मुगलों और अंग्रेजों के आक्रमणों का परिणाम है जिसने भारतीय संस्कृति को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया तथा भारतीय राजनीतिक शासन के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। साथ ही भारत के नृजातीय वर्णन के अध्ययन के लिए वैकल्पिक आलोचनाएँ प्रस्तुत कीं।

इस प्रकार इतिहास और नृजातीय वर्णन भारत की बहुसांस्कृतिक पहचान के महत्वपूर्ण कारक हैं। पहले ने देश के विभिन्न भागों में बसे विविध समुदायों को समेकित रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण रूप से योगदान दिया है, विशेषतः राजनीतिक अस्तव्यस्तता या हलचल अथवा प्रवजन या पुनर्वास जैसी ऐतिहासिक घटना के बाद। भारत के विभिन्न भागों में पारसी और पुर्तगाली समुदाय भारतीय बहुसांस्कृतिकता के भीतर इस प्रकार की वैकल्पिक अस्मिता विकसित करने वाले कुछ उदाहरण हैं। दूसरी ओर नृजातीय वर्णन, भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारतीय संस्कृति को समझने में भारतीयता की विविध छवियाँ प्रस्तुत करता है। यद्यपि भारत की अस्मिताओं, नृजातीय विशिष्टताओं के समक्ष आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप अपनी सांस्कृतिक विविधता को बचाए रखने के लिए नई चुनौतियाँ हैं और भूमण्डलीय संस्कृति या संस्कृतियों में आत्मसातीकरण के नए रास्ते उनके सामने खुल गए हैं।

### 5.2.2 भाषा

भारत एक बहुभाषिक राष्ट्र है। यहां दो दर्जन से भी अधिक मुख्य भाषाएँ और साथ ही बहुत सी गौण भाषाएँ भी हैं। भारत की बहुभाषिक पृष्ठभूमि उद्गम और विकास के चरणों के निर्णायक बिन्दुओं से होते हुए इसके भाषिक इतिहास का परिणाम है। इसमें से परवर्ती अर्थात् विकास के चरण कभी-कभी देश की राजनीतिक उथल-पुथल के साथ हुए।

भारत का भाषिक इतिहास सामान्यतः संरचना की दो पद्धतियों से समझा और निर्धारित किया जाता है। एक ओर द्रविड़ जैसी भाषिक जड़ें हैं जो वाक् और लिपि दोनों स्तरों पर भारत की भाषिक अस्मिता के आधार पर इसकी एक प्रकार की छवि बनाती हैं। भाषिक अस्मिता के निर्माण की यह प्रक्रिया भारत की राष्ट्रीय अस्मिता के निर्माण की ओर ले जाती है और यह प्रक्रिया अन्य अभ्यासों के साथ अनुवाद, सेमिनार/संगोष्ठी जैसे साहित्यिक-अकादमिक अभ्यासों के समेकन द्वारा परिभाषित है।

देश में अंग्रेजी का आगमन भारत की भाषिक अस्मिता की मान्यता का दूसरा पहलू है। अंग्रेज केवल वृहत्तर औपनिवेशिक उद्यम हेतु वाणिज्य के स्थापन और प्रचुर विकास के लिए धार्मिक 'मिशन' के दृढ़संकल्प ही नहीं लाए अपितु एक भाषा भी थोपी जो कई तरीकों से सत्ता की भाषा बन गई।

भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ ही शक्ति-संरचना का एक नया 'रूप' आया। इसने शिक्षित भारतीयों के मन को नियंत्रित कर लिया और भाषा प्रयोग के क्षेत्र में उनके सामने बहुलवादी परिदृश्य रखा। दूसरे शब्दों में, अंग्रेजी भाषा कार्य/नौकरी, जीवन निर्वाह स्तर, मानव के पारस्परिक प्रभाव और साहित्यिक व सांस्कृतिक आदान-प्रदान जैसे क्षेत्रों में नए परिदृश्य सामने लाई। भारतीय शिक्षण संस्थानों ने अंग्रेजी भाषा और अनुवाद पर विषय उपलब्ध कराए जिसने भारतीय शिक्षार्थियों के लिए नए अवसर खोले। अंग्रेज रचनाकारों के पाठों को सम्मिलित करने के लिए साहित्यिक सीमाओं को विस्तृत किया गया। भारतीयों के बीच अंग्रेजी भाषा के प्रयोग और लोकप्रियता के विस्तार में जबरदस्त व द्रुतगामी विकास हुआ। यह मुख्यतः प्राच्यविद्या के विद्वानों और मुंशियों जैसे नियुक्त विशेषज्ञों द्वारा मध्यस्थ, अंग्रेज और भारतीयों के बीच सांस्कृतिक सामग्री के नानाविध आदान-प्रदान में परिणत हुआ। मध्यस्थता की इस प्रक्रिया ने आदान-प्रदान के स्वीकृत रूपों में समेकित होने के लिए लम्बा समय लिया और यह अभ्यासों की सांस्थानिक क्रियाविधि जैसे कि अनुवाद, भाषांतरण, शिक्षण और अध्ययन के अन्य माध्यमों द्वारा सम्भव हुआ।

### 5.2.3 सांस्कृतिक अस्मिता

सांस्कृतिक अस्मिता से क्या तात्पर्य है? जिस सन्दर्भ में यह उपयोग किया जाता है उस आधार पर इसे विभिन्न धरातलों पर समझा जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों में संस्कृति पर बहस तेजी से बढ़ी है, जिसके केन्द्र में अस्मिता सम्बन्धी मुद्दे हैं। ऐसे बहुसांस्कृतिक राष्ट्र जहां शक्ति संपन्न वर्गों द्वारा सदियों से उपेक्षित वर्गों का शोषण करने की परम्परा रही है, वहाँ इस संस्कृति विमर्श ने अध्ययन के नए क्षेत्रों को जन्म दिया है। यह विभिन्न सामाजिक संरचनाओं के विन्यास में है कि सांस्कृतिक अस्मिता ऐतिहासिक रूप से अनिश्चित श्रेणियों के भीतर संगठित एक निर्मिति के रूप में समझी जाती है।

एक निर्मिति के रूप में सांस्कृतिक अस्मिता की अवधारणा को और खोजने के लिए किसी भी समाज द्वारा तय किए गए प्रतिमानों को अस्वीकृत करना, पदानुक्रमों पर प्रश्न खड़ा करना, उन्हें उलट देना और 'शोषितो' के लिए अवसर उत्पन्न करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के अध्ययन में प्रभावशाली सांस्कृतिक व्यवहारों के समक्ष हाशिये पर पड़ी विविध अस्मिताओं को सम्बोधित करना औचित्यपूर्ण हो जाता है। अकादमिक तौर पर कहें तो तुलनात्मक साहित्य जैसे अनुशासनों से सांस्कृतिक अध्ययन जैसे अनुशासन में विस्थापन या बदलाव हो रहा है जो दर्शाता है कि अस्मिता के मुद्दे कितने महत्वपूर्ण हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त अनुवाद अध्ययन जैसे अनुशासन अब लगातार नए परिप्रेक्ष्य से समझे जाते हैं। यहां तक कि एक विशिष्ट पाठ को अनुवाद करने का अनुवादक का चुनाव भी सांस्कृतिक अस्मिता की समस्याओं को उभारने की एक पाठ की क्षमता से प्रभावित लगता है।

भारतीय सन्दर्भ में दलित/ब्राह्मण, स्त्री/पुरुष, जमींदार/बंधुआ मजदूर आदि समाज में प्रचलित युग्मों के माध्यम से इन सांस्कृतिक अस्मितावादी विमर्शों को समझा जा सकता है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक आंदोलनों ने अस्मिता के विचार को आगे बढ़ाया है। मंडल आयोग इस प्रकार का एक सूत्रपात था जिसने शिक्षा नीति में आरक्षण पर बहस को प्रचारित किया जिसने आगे चलकर दलित अस्मिता पर विचार के नए आयाम खोले। इस प्रकार के सन्दर्भ में पितृसत्तात्मक संरचनाओं को पुनर्निधारित करते हुए लैंगिक मुद्दे भी संस्कृति सापेक्ष बन जाते हैं। इन आंदोलनों ने हाशिये से आए लेखकों के लेखन में स्वानुभूति के चित्रण के माध्यम से साहित्य में भी अपनी जगह बनाई।

### 5.2.4 भाषिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान

भाषा सम्प्रेषण का आधारभूत घटक है जो विविध समुदायों के बीच सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतिनिधित्व करती है, सूचना व ज्ञान के रूपों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाती है। भाषा अपनी प्रकृति में संस्कृति सापेक्ष होती

है और किसी समाज के अवबोधन की संरचना में सक्षम होती है। यह ऐतिहासिक परिस्थितियों में यादृच्छिक तौर पर विकसित संरचना के सिद्धान्तों द्वारा नियन्त्रित होती है।

इस प्रकार यह समझना अत्यावश्यक है कि भाषा एक केन्द्र बिन्दु है जहां विविध सांस्कृतिक और उपसांस्कृतिक धाराएँ एक दूसरे से आकर मिलती हैं। एक समय विशेष में रही सांस्कृतिक विविधता की समझ के बिना, एक राष्ट्र के भाषिक वैविध्य के अध्ययन में कोई गहराई नहीं हो सकती। एक भाषा में प्रतिमान विस्थापन नए-पुराने सांस्कृतिक रूपों द्वारा निरन्तर परिवर्तनशील उपयोगों में निहित है। सांस्कृतिक ढांचे में तेजी से होते तकनीकी परिवर्तन के साथ शब्दकोश जैसी भाषिक श्रेणियों का शाब्दिक व प्रतीकात्मक दोनों रूपों में निरन्तर संशोधन होता रहा है। फिर भी यह विचारणीय है कि सांस्कृतिक रूपों में प्रत्यक्ष परिवर्तन के उपभोग के कारण ग्रामीण परिदृश्य की तुलना में भाषा का शहरी अनुभव परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील दिखाई पड़ता है।

ये वे असम्बद्ध परिवर्तन है जिन्हें साहित्यिक अभिव्यंजना समय के साथ आत्मसात् करती है और नए प्रतीकों के बारम्बार प्रयोग के बाद वे मानक के तौर पर स्वीकृत हो जाते हैं। भाषा के ऐसे सामर्थ्य का उपयोग विभिन्न साहित्यों में सांस्कृतिक विभिन्नता को दिखाने के लिए किया जाता है, जिसमें अस्मिता सम्बन्धी मुद्दे प्रमुख हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी में भारतीय लेखन भाषाओं में योजनात्मक परिवर्तन का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसे ब्रिटिश अंग्रेजी के प्रतिरोध के रूप में देखा जाता है और अब भारतीय अंग्रेजी के रूप में पूर्ण स्वीकृत है।

## 5.3 भूमण्डलीय सन्दर्भ में भारतीय बहुसांस्कृतिकता

भारत की बहुसांस्कृतिक अस्मिता भारत और उसके बाहर दोनों ही जगहों पर राजनीतिक/ऐतिहासिक, साहित्यिक/सौन्दर्य शास्त्रीय एवं अन्तर अनुशासनिक अध्ययनों के क्षेत्र में बौद्धिक अन्वेषण का विषय रही है। विशेषतः पिछले कुछ दशकों में भारत का सांस्कृतिक और भाषिक वैविध्य अकादमिक क्षेत्र और उसके आस पास होने वाले विभिन्न ऐतिहासिक और साहित्यिक विमर्शों का विषय रहा है। भारत के बाहर विश्वविद्यालयों में इस वैविध्य के मुद्दे पर पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए जा रहे हैं। इस विषय पर भारत व भारत के बाहर सम्मेलन एवं संगोष्ठियों का आयोजन किया जा रहा है। विश्वभर में इतिहास, साहित्य और नृविज्ञान के मापदण्डों या परम्परागत शैक्षणिक पाठ्यक्रम में हाल के दशकों में एक अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। इसके परिणामस्वरूप परम्परागत सिद्धान्तों में भारतीय बहुसांस्कृतिक अस्मिताओं के इस नए दृष्टिकोण का समावेश हुआ। इस विषय पर बहुत से प्रकाशन भी रहे हैं जिन्होंने भारतीय बहुसांस्कृतिकता पर विमर्श को प्रोत्साहित किया ताकि विस्तृत तथा अधिक व्यापक आयाम सामने आ सकें।

### 5.3.1 भूमण्डलीय परिप्रेक्ष्य में भारत की स्थिति

जैसा कि पिछले खण्डों में चर्चा की गई कि अन्य देशों की तुलना में एक बहुसांस्कृतिक राष्ट्र होने के कारण भाषा और अस्मिता के स्तर पर भारत की स्थिति अधिक जटिल है। अपनी स्थानीय बोलियों का प्रयोग करते और अपने स्थानीय सांस्कृतिक स्वरूपों का अनुसरण करते विभिन्न राज्य भूमण्डलीय परिदृश्य पर एक बहुआयामी अर्थव्यवस्था के रूप में देखे जाते हैं। संस्कृतियों का यह मिश्रण राष्ट्रीय शक्ति के रूप में अनुभव किया जाता है जिसका दशकों से साहित्यिक कृतियों और दृश्य विधाओं के विविध माध्यमों से प्रचार किया गया।

यद्यपि बहुसांस्कृतिकता का विचार कुछ मूल सिद्धान्तों तक सीमित होता है और इस प्रकार का प्रस्तुतीकरण असन्तोषजनक रह जाता है। उदाहरण के लिए स्वतंत्रता पश्चात हिन्दी को बड़े पैमाने पर राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित किया गया और इसके लिए कई वित्तीय निकायों का भी गठन किया गया। साहित्य अकादमी जैसा संगठन उन सीमित सरकारी संस्थानों में से है जो भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहन देते हैं और उन्हें बड़े (राष्ट्रीय) मंच पर प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं। भारतीय कला और साहित्य को विस्तृत प्रतिनिधित्व देने जैसी संभावनाओं को व्यावहारिक बनाया जाना चाहिए जिसके द्वारा देशज सांस्कृतिक पहलुओं को देशज के साथ मुख्यधारा के मिश्रण का विस्तृत परिदृश्य उपलब्ध कराते हुए और अधिक पहुँच में लाया जा सके।

भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप साहित्य के अतिरिक्त कला के अन्य प्रकारों जैसे – रंगमंच, नृत्य कला और सिनेमा ने विस्तार के नए माध्यम अर्जित किए हैं। पिछले कुछ दशकों में मूर्तिकला, संगीत और चित्रकला जैसी कला की

अन्य विधाओं ने भी भूमण्डलीय स्तर पर भारत की छवि को प्रस्तुत किया है। कला के इन प्रकारों के विभिन्न क्षेत्रीय रूपान्तर सांस्कृतिक महोत्सवों, फिल्म महोत्सवों इत्यादि जैसे भूमण्डलीय कला समाजों में भली-भांति प्रचलित हैं। संस्कृतियों के भूमण्डलीय प्रसार से इन रूपों में परिवर्तन प्रभावित हुए हैं जिससे भारतीयता के प्रस्तुतीकरण के नए रूप उत्पन्न हुए। शहरी युवाओं का इन रूपों से बंधा अनुभव करना, दैनिक जीवन के विविध धरातलों पर बदलते हुए परिदृश्य की एक प्रतिक्रिया है। भारतीय संस्कृति के रूपकों के चित्रण से भूमण्डलीय और स्थानीय भेदों के बीच यह जटिल संवाद तक का यह परिवर्तन बहुत ही महत्वपूर्ण है। रंग दे बसन्ती भारतीय देशभक्ति के साथ भूमण्डलीय अभिव्यक्ति की इस प्रकार की वार्त्ता का एक फिल्मी उदाहरण है। मदर इण्डिया या लगान जैसी पिछली कई फिल्मों में चित्रित भारतीय राष्ट्रवाद के ग्रामीण प्रस्तुतीकरण के विपरीत 'रंग दे बसन्ती' राष्ट्रवादी उत्साह के साथ भारतीय युवाओं के विद्रोह के अनुभवों का एक पश्चिमवासी की आंखों द्वारा वर्णन है।

## 5.3.2 भाषा, संस्कृति एवं अनुवाद की भूमिका

देश और विदेश में भारत को प्रस्तुत करने में भाषा, संस्कृति और अनुवाद तीनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत की बहुभाषिकता और सांस्कृतिक विषमता भारत की उस राष्ट्रीय अस्मिता के लिए नए अवसर प्रदान करती है जो छवि प्रस्तुत करने के साथ-साथ भारतीय राष्ट्रवाद, इसकी सांस्कृतिक विरासत और अद्वितीय भाषायी बहुलता के लिए परस्पर आलोचनाएँ भी प्रस्तुत करती है। संस्कृति के भीतर भाषा एक महत्वपूर्ण घटक है और इसके अन्तर्गत मुहावरे व लोकोक्तियाँ, संरचनाएँ और शब्द सम्पदा जैसे कई एकक आते हैं। ये अधिकतर भाषा सापेक्ष होते हैं और कभी-कभी एक भाषा के भीतर ही बोलियों के स्तर पर विविध रूप ग्रहण करते हैं। इस प्रकार भारत की भाषिक विविधता ही बड़े पैमाने पर देश की बहुसांस्कृतिकता को अभिव्यंजित करती है। जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है अंग्रेजी ने भारतीय सन्दर्भ में शक्ति की भाषा के रूप में कार्य किया है। स्वतंत्रता पूर्व तथा स्वतंत्रता पश्चात् दोनों ही कालों में अंग्रेजी ने कार्य, रहन-सहन, रचनात्मकता इत्यादि सम्मिलित करते हुए सम्भवतः सबसे अधिक आकर्षक, लाभदायक, रुचिकर, बौद्धिक रूप से प्रेरित करने वाले और प्रगतिशील तौर पर पर्याप्त साधन, माध्यम और मानव शक्ति के क्षेत्र सृजित किए हैं। इसने भारत तथा विदेशों में भारतीयों के बीच तथा भारतीय व अन्य देशों के लोगों के बीच, सभी प्रकार के संस्थानों के बीच सम्प्रेषण के सम्भवतः सबसे अधिक सुविधाजनक द्वार उपलब्ध कराए हैं।

राष्ट्रीय अस्मिता को प्रस्तुत करने हेतु संस्कृति में प्रभावपूर्ण सामर्थ्य है। स्वतंत्रता-पश्चात् भारत ने कई बार भूमण्डलीय परिदृश्य पर स्वयं व अपनी राष्ट्रीय अस्मिता को सांस्कृतिक इतिहासों और व्यवहारों के एक विषमांग समूह से बनी हुई अपनी सांस्कृतिक विरासत के माध्यम से प्रस्तुत किया। इसके परिणामस्वरूप भारत की सांस्कृतिक विषमांगता को भूमण्डलीय स्तर पर मान्यता मिली जो राजनीति, जीवन, कला और दृश्य संस्कृतियों के अपरिचित क्षेत्रों में इस सांस्कृतिक वैविध्य की स्वीकृति, आत्मसातीकरण और कभी-कभी अनुकूलन की ओर भी ले गई।

ऐसे भाषिक और सांस्कृतिक तौर पर विविधतापूर्ण क्षेत्र में अनुवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। यह स्रोत संस्कृति और लक्ष्य संस्कृति अर्थात् जिस भाषा में पाठ अनूदित किया जाना है, के बीच एक शक्तिशाली मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। अनुवाद के अनेक विद्वानों का कहना है कि जब हम किसी साहित्यिक कृति का अनुवाद करते हैं तब हम वास्तव में किसी संस्कृति (अर्थात् स्रोत संस्कृति) का अनुवाद करते हैं। एक साहित्यिक पाठ के सभी (स्रोत) संस्कृति सापेक्ष वर्णनों को सम्मिलित करते हुए उसके सांस्कृतिक सारांश को लक्ष्य (सांस्कृतिक) क्षेत्र में अन्तरित किया जाता है जहाँ इन विवरणों को किसी भी तरह अनुकूल बनाया जाता है। इस प्रकार अनुवाद स्रोत और लक्ष्य संस्कृतियों के बीच अनुकूलन, मध्यस्थता और 'दूरी घटाने' का कार्य करता है।

भारतीय सन्दर्भ में अनुवाद ने हमेशा ही सामाजिक-सांस्कृतिक और साहित्यिक आदान-प्रदान की सम्भावना उत्पन्न करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सामान्यतः साहित्यिक/भाषिक क्रियाकलाप के रूप में अनुवाद ने लोगों के बीच सम्प्रेषण को अधिक आसान बनाया है। अनुवाद लोगों को अपनी संस्कृति के अतिरिक्त दूसरों की संस्कृति को जानने में अधिक सहजता प्रदान करता है।

भारतीय सन्दर्भ में अनुवाद अनेक लेखकों, उनके लेखन और अन्य सभी प्रकार की पाठ्य सामग्री को एक बहुत बड़े पैमाने पर पाठक देता है जिसके द्वारा पाठकों और चिंतकों के लिए एक समान नए मंच और विमर्श बनते हैं। अब तमिल और बांग्ला पाठ अनुवाद द्वारा गैर-तमिल और गैर-बांग्ला पाठकों को उपलब्ध हैं। कला के अन्य माध्यमों जैसे रंगमंच और सिनेमा में भी यह प्रयास देखा जा सकता है। मूलतः भारतीय देशी भाषाओं में लिखित पाठों के अंग्रेजी अनुवाद अब भारतीय विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी पाठ्यक्रम के रूप में चुने जा रहे हैं। यदि अनुवाद अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अनुवादक ने किया हो तब पाठ भारत के बाहर के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी स्थान बना लेता है। इस प्रकार मानविकी की वर्तमान सीमाओं में नए आयाम जोड़ने के लिए इसके अनुशासनों की सीमाओं को विस्तृत किया जा रहा है।

### 5.3.3 उत्तर-औपनिवेशिक भारत में बहुसांस्कृतिकता

इस प्रकार बहुसांस्कृतिकता हमेशा ही व्यापक अर्थ में उदारवाद के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करती है। यद्यपि कुछ दार्शनिक बहुसांस्कृतिकता के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हुए उदारवाद से आगे दृष्टि डालते हैं। उत्तर उपनिवेशवादी परिप्रेक्ष्य में लिख रहे सिद्धान्तकारों के लिए यह एकदम सही है। जनजातीय संप्रभुता का मामला केवल जनजातीय संस्कृति और सदस्यता को महत्व देने की चारदीवारी में ही कैद नहीं है, अपितु देशज लोगों के विरुद्ध किए गए ऐतिहासिक अन्यायों के लिए उनके ऋणों पर भी निर्भर है। इतिहास का अनुमान लगाना काफी कठिन कार्य है। देशज लोगों की संप्रभुता के समर्थक, देशज समूहों के समान संप्रभु स्तर की अस्वीकृति, उनकी भूमि से बेदखली और उनके सांस्कृतिक व्यवहारों के ध्वंस की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विरुद्ध देशज लोगों की मांगों की समझ के महत्व पर बल देते हैं। यह पृष्ठभूमि मूल निवासियों पर राज्य के अधिकार की वैधता पर प्रश्न खड़े करती है और स्वशासन के अधिकार के साथ देशज समूहों के लिए विशेष अधिकारों और सुरक्षा के लिए प्रथम दृष्टया उदाहरण उपलब्ध कराती है।

एक उत्तर-औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य संवैधानिक और राजनीतिक संवाद के उदाहरण भी विकसित करना चाहता है जो सांस्कृतिक तौर पर बोलने व क्रिया करने के भिन्न तरीकों को मान्यता देते हैं। बहुसांस्कृतिक समाज भिन्न धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोणों से बने होते हैं। यदि उदारवादी समाजों को ऐसी विविधता को गम्भीरता से लेना है तो उन्हें मानना होगा कि उदारवाद मनुष्य और समाज के एक निश्चित दृष्टि पर आधारित कई स्वायत्त दृष्टिकोणों में से एक है। उदारवाद संस्कृति से मुक्त नहीं है अपितु यह अपनी स्वयं की एक विशिष्ट संस्कृति को अभिव्यक्त करता है। यह कथन केवल उदारवादी और अनुदारवादी राज्यों के बीच सीमाओं के पार ही नहीं अपितु उदारवादी राज्यों के अनुदारवादी अल्पसंख्यकों से सम्बन्धों पर भी लागू होता है। जैसा कि भीखू पारेख तर्क देते हैं कि उदारवादी सिद्धान्त विभिन्न सांस्कृतिक समुदायों के बीच सम्बन्धों की देखरेख के लिए एक निष्पक्ष ढांचा नहीं उपलब्ध करा सकता। इसके बजाय वे अन्तर्सांस्कृतिक बातचीत के एक अधिक खुले नमूने का समर्थन करते हैं जिसमें उदारवादी समाज की संवैधानिक और कानूनी मान्यताएँ चुनौती के लिए खुली होने के साथ पारसांस्कृतिक बातचीत के लिए एक प्राथमिक प्रारम्भ बिन्दु के रूप में कार्य करें। जेम्स टुली अन्तर्सांस्कृतिक संवाद के लिए अधिक सम्मिलित आधार खोजने के लिए पश्चिमी राज्यों के देशज लोगों से सम्बन्धों को केन्द्र में रखकर ऐतिहासिक और समकालीन संविधानवाद की भाषा का निरीक्षण करते हैं।

यह विमर्श उत्तर-औपनिवेशिक भारतीय सन्दर्भ में 20वीं शताब्दी के अंतिम दशकों तक बहुसांस्कृतिकता के अध्ययन एवं समझ की विश्व में इन निष्कर्ष बिन्दुओं तक पहुँचा जिनके आलोक में यह पाया गया कि हमारे समय के इतिहास में सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण कहे जाने वाले आंदोलन भूमण्डलीकरण की भूमिका या प्रभाव का अध्ययन करना और इसके साथ ही हो रहे 'संस्कृति' के 'प्रसार' का अध्ययन करना अत्यावश्यक है।

### 5.3.4 भूमण्डलीय परिप्रेक्ष्य में बहुसांस्कृतिकता

भूमण्डलीय सन्दर्भ में संस्कृति प्रतीकात्मक मानदण्डों द्वारा प्रतिनिधित्व के उद्देश्य से कार्य करती है। भूमण्डलीय बहुसांस्कृतिक शहरी परिवेश उन लाखों लोगों के लिए घर है जो आवास और निवास के अपने प्रयासों की विश्व में 'निर्वासित' जीवन जी रहे हैं। वे अपनी मूल संस्कृति से दूर रहते हुए भी सांस्कृतिक व्यवहारों में सक्रिय रूप से शामिल हैं। यह 'अजनबी' परिवेश में उनके 'अस्तित्व' को निरूपित करने के साथ-साथ प्रमाणित भी करता है।

बीसवीं शताब्दी के अन्त तक आते-आते विश्व के अत्यधिक जनसंख्या वाले देशों से प्रवासी जनसंख्या की एक महत्वपूर्ण बाढ़ ने 'भूमण्डलीय' शहरी परिवेशों पर अधिकार कर लिया जिसने उन्हें विकास और अवसर के महत्वपूर्ण भौतिक संसाधन उपलब्ध करवाए थे। विविध प्रकार की संस्थाओं ने लोगों के इस विशाल समूह को आकर्षित करने और भूमण्डलीय प्रदर्शन' प्रदान करने में निर्णायक भूमिका निभाई। इस प्रकार विकास और समृद्धि के उन 'भूमण्डलीय' केन्द्रों में प्रवासी समुदाय बने जैसे कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि में प्रवासी भारतीय समुदाय या अफ्रीकी-अमेरिकी समुदाय या अरब अमेरिकी समुदाय इत्यादि जिसमें से सभी अपनी पहचान को सुरक्षित रखने के मुद्दे का सामना अपने-अपने ढंग से कर चुके हैं। इस प्रकार ये ऐतिहासिक चरणों के माध्यम से राजनीतिक और सांस्कृतिक पहचान अथवा व्यक्तिवाद की शर्तों पर समानता प्राप्त करने में सक्षम हुए हैं। इस प्रकार के समुदायों को यद्यपि बहुसांस्कृतिक परिवेश में पहले 'अजनबी' समझा जाता था तथापि ये अपनी मूल पहचान और सांस्कृतिक व्यवहार के चिह्न रखते हैं। इन 'बड़े' परिवेशों में उनका रहन-सहन अपने पुराने परिवेश की पहचान और सांस्कृतिक व्यवहार के मूल चिह्नों को पुनर्निर्मित और अनुकरण करने के एक चेतन प्रयास से जारी रहता है। इस प्रकार इन नगरीय 'भूमण्डलीय' परिवेशों में बहुसांस्कृतिक समुदाय बीच में झूलते रहते हैं। वे न तो अपनी मातृभूमि से वास्तव में सम्बन्ध रखते हैं, न ही अपने निवास क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों और संस्कृति से सम्बन्ध रखते हैं। यद्यपि वे अपनी सम्बन्धित सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उनके उलझे हुए व्यक्तित्व में सांस्कृतिक अस्मिता की काल्पनिक प्रतिकृति के उद्देश्य से बहुत महत्वपूर्ण है और विजातीय के लिए प्रतिनिधि सांस्कृतिक अस्मिता के रूप में भी महत्वपूर्ण है।

प्रवासी अध्ययन, उत्तर औपनिवेशिक सिद्धान्त और सांस्कृतिक अध्ययन जैसे विमर्शों ने विविध तरीकों से इन सभी प्रकार की चिन्ताओं को जोड़ा है। साथ ही भूमण्डलीय सांस्कृतिक परिवेश के घटकों और इस प्रकार के परिवेशों के बीच जीवन जीते 'अधीनों' की जटिलताओं को पहचाना है। इन प्रवासी समुदायों द्वारा लिखित ऐसे भी साहित्य हैं जो प्रवासी व्यक्तियों द्वारा देखे गए और भोगे गए विविध रूढ़िवादी और अतिवादी परिप्रेक्ष्यों को प्रतिबिम्बित करते हैं। बहुसांस्कृतिक जनसंख्या के प्रतिबिम्बों को नृविज्ञान, अन्तरराष्ट्रीय राजनीति और भूमण्डलीकरण जैसे क्षेत्रों में भी सूक्ष्म निरीक्षण का विषय बनाया गया है।

बहुसांस्कृतिकता सदैव से ही नगरों से सम्बन्धित रही है क्योंकि इसमें यात्रा, प्रवास, पारस्परिक अनुकूलन और लोगों के बीच लम्बी दूरी में विनिमय शामिल रहा है। मानव सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में देखें तो बहुसांस्कृतिकता 21वीं सदी का सबसे अद्भुत तथ्य है। बहुसांस्कृतिकता के विरोधी चाहे जो कहें लेकिन लोग सदा ही अपनी विविधताओं को संजोए रखेंगे, विशेषकर एक भूमण्डलीय, नगरीकृत समाज में जो गम्भीर उथल-पुथल के लिए अक्सर आसान और संवेदनशील होता है। हालांकि इन सभी विरोधों के बीच समझौता आवश्यक है क्योंकि आधुनिक विश्व लम्बे संघर्ष को झेल नहीं सकता। जैसा कि इतिहास प्रमाणित करता रहा है कि वे संस्कृतियाँ जिनकी जीवन शैली अन्य लोगों को बहुत आकर्षित करती है वे विकास करेंगीं। भौगोलिक अर्थ में देखें तो बहुसांस्कृतिकता अन्तरराष्ट्रीय राजनीति, मीडिया, नए युग की तकनीकी क्रांति और मानव विकास के निरन्तर बदलते आयामों और सपनों के साकार होने का ही परिणाम है। पिछली सदी में 'नगर' का निर्माण और 21वीं सदी में तकनीक, पूंजी और मीडिया के नए प्रसारों ने बहुसांस्कृतिकता को एक वास्तविक अवस्था और आधुनिक समय का एक निर्णायक गुण बनाया है।

### 5.3.5 भूमण्डलीकरण एवं सांस्कृतिक प्रसार

भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप सांस्कृतिक प्रसार की प्रक्रिया पारम्परिक बाधाओं को पार कर गई है। अपने नवीनीकृत आर्थिक और वैचारिक रचनातंत्र से इसने एक प्रभावी शासक द्वारा संचालित आर्थिक शक्तियों को बल दिया है। ये आर्थिक शक्तियां एक समुदाय या बाजार में हर 'क्षेत्रीय' या 'स्थानीय' वस्तु के ऊपर छा जाना चाहती हैं। दूरसंचार एवं जनसंचार माध्यमों के विस्तार से बाजार की गत्यात्मकता ने आदान-प्रदान के मापदण्डों को बढ़ा दिया है। इससे स्वदेशी माल के प्रचुर प्रसरण में तरलता आ गई है।

भाषा, पहनावे, खानपान और त्यौहारों के सन्दर्भ में 'भूमण्डलीय' और 'स्थानीय' श्रेणियों के बीच का अन्तर धुंधला पड़ गया है। स्वदेशी सांस्कृतिक पक्ष और उनके उत्पाद गैर देशीय मंच पर अपनी जगह बनाने में सफल रहे हैं,

जबकि विदेशी उत्पाद स्थानीय परिवेश के अन्तर्गत परिचालन और वितरण ग्रहण कर चुके हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो 'भूमण्डलीय' और स्थानीय की सीमांकन रेखा लगभग मिट सी गई है। स्थानीय उपभोक्ता अब 'ब्रांड' के प्रति जागरूक हो गए हैं। ठीक वैसे ही जैसे शहरों या 'भूमण्डलीय राजधानियों' के उपभोक्ता बहुत सोच समझकर स्वदेशीय, स्वजातीय एवं सांस्कृतिक उत्पादों को तलाशते हैं।

जीवन, रहन-सहन और सभी प्रकार के प्रस्तुतीकरण के सन्दर्भ में यूरोपकेन्द्रित दृष्टिकोण बहुसांस्कृतिकता के विचार से जुड़ा हुआ है। उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन में संस्कृति उन्मुख विमर्श भी भूमण्डलीकरण की तरह एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 'यूरोपकेन्द्रिकता' शब्द यूरोप केन्द्रित (सरलीकृत अर्थ में पश्चिम केन्द्रित) विचारों से प्रभावित होते विमर्शों की ओर संकेत करता है। उत्तर-औपनिवेशिक चिन्तकों का तर्क है कि अतीत में हमारी कला, साहित्यों, संस्कृतियों और इतिहासों पर किए गए अध्ययन या विमर्श अधिकतर यूरोप केन्द्रित थे। इसलिए उत्तर-औपनिवेशिकता यूरोप केन्द्रित आदर्शों, सोच और पद्धतियों की आलोचना करती है और इस प्रक्रिया में अपने तर्कों के आधार पर संस्कृति को भूमण्डलीकरण तथा सांस्कृतिक प्रसार से जोड़कर देखती है।

### 5.3.6 प्रस्तुतीकरण एवं अस्मिता के प्रश्न : साहित्य एवं संस्कृति

पिछले कुछ दशकों में भारतीय सन्दर्भ में 'प्रस्तुतीकरण' (Representation) और 'अस्मिता' (Identity) के प्रश्नों का अध्ययन बौद्धिक अन्वेषण का महत्वपूर्ण भाग बन गया है। यह भारतीय साहित्यिक परम्पराओं और सांस्कृतिक संरचनाओं के पथ में घटित हुए कुछ आंदोलनों के उदय से प्रमाणित हो चुका है। यह समझना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि कैसे ये साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रस्तुतीकरण व्यापक स्तर पर उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन जैसी एक अनुवर्ग श्रेणी के अन्तर्गत अध्ययन किए जाते हैं।

उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन यूरोप केन्द्रित विश्व-व्यवस्था के विरुद्ध 'प्रस्तुतीकरण' और 'अस्मिता' के मुद्दों का आह्वान करते हुए एक अनुशासन के रूप में उभरे। जल्दी ही साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययनों के सम्बन्ध में 'तीसरी दुनिया' के अन्वेषणों के परिणामस्वरूप यह विद्वता का बड़ा क्षेत्र बन गया। लिंग, वर्ग, वर्ण और भाषा के मुद्दे इस अनुशासन के अधिकांश विमर्शों के केन्द्र में रहे हैं। यह इन क्षेत्रों के भीतर है कि जब हम उत्तर-औपनिवेशिक साहित्यों का अध्ययन करते हैं तो मार्क्सवादी और स्त्रीवादी दृष्टिकोण ध्यान में रखे जाते हैं। इस सम्बन्ध में 'भाषा' भी हाशिये के साहित्यों पर हो रहे विमर्शों का एक मूलभूत घटक बन गई है।

जहाँ यह अनुशासन भारतीय विश्वविद्यालयों और अन्य बौद्धिक क्षेत्रों के पाठ्यक्रमों का भाग बन गया है वहीं इसने भारतीय सन्दर्भ में संस्कृति/वर्ग/लिंग से संगत शक्ति संरचनाओं को सम्बोधित करने के लिए हाशिये के अन्य विमर्शों का रास्ता तैयार किया है। उपाश्रित अध्ययन (Subaltgern Studies) की एक बिल्कुल नई धारा वर्ग चेतना को सम्बोधित करने के लिए उभरी। दलित साहित्य भी ब्राह्मण व्यवस्था में अस्मिता के मुद्दों को पुनर्निर्धारित करते हुए सम्मोहक भाषा के साथ सामने आया।

उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन दो दिशाओं में विकसित हुआ – आलोचना/सिद्धान्त और साहित्य। ये दोनों ही हाशिये के विमर्श को समझने में एक दूसरे की सहायता करते हैं। उत्तर-औपनिवेशिक साहित्य उपनिवेश संस्कृतियों के यूरोप केन्द्रित प्रस्तुतीकरण के लिए एक अवरोध के रूप में विकसित हुए। यह स्व-प्रतिनिधित्व का ही कार्य था जिसने 'तीसरी-दुनिया' के लेखकों को अपनी कृतियों में सांस्कृतिक अस्मिता के मुद्दों से उलझने के लिए प्रेरित किया। इसी प्रकार हाशिये के साहित्य जैसे कि दलित साहित्य ने मुख्यधारा साहित्य की संकल्पना को चुनौती दी और सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों में अस्मिता के मुद्दों को प्रयोग में लाया। दलित साहित्य का एक विशाल समूह कथा-साहित्य व आत्मकथाओं का है जो ग्रामीण और शहरी दोनों अनुभवों में दलितों की व्यथा और जातीय भेदभाव से जुड़ा हुआ है।

साहित्यों पर दलित व अन्य उपेक्षित इतिहास लेखन और विमर्शों ने सांस्कृतिक इतिहास के उन अन्वेषित क्षेत्रों को सम्बोधित किया जो भारतीय इतिहास की श्रेष्ठ रचनाओं में दबे रह गए थे। इन विमर्शों ने न केवल भारतीय समाज में व्याप्त वैचारिक ढांचों पर प्रश्न उठाने का रास्ता खोला अपितु यह तथ्य भी सामने आए कि इन वर्णनों की प्रधानता के कारण ही उनके संभाव्य वैकल्पिक इतिहासों को कभी पहचान नहीं मिली।

## 5.4 सारांश

इस प्रकार हमने देखा कि भारत और भारतेतर देशों में बहुसांस्कृतिकता को लेकर किस तरह की धारणाएँ हैं तथा भारतीय बहुसांस्कृतिकता किस प्रकार अन्य बहुसांस्कृतिक देशों से अलग है। यह स्पष्ट है कि जब-जब बहु संस्कृतियों की बात आएगी तब-तब साथ ही अस्मिता और प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी सामने आएगा। उत्तर-आधुनिक समय की देन अन्य विचारों की तरह बहुसांस्कृतिकता भी हाशिये पर पड़े समाज की चिन्ता करती है, यह हमने प्रस्तुत इकाई के माध्यम से जाना। अगली इकाई में हम अनुवाद एवं पारसांस्कृतिक दक्षता का विकास विषय पर गहनता से चर्चा करेंगे।

## 5.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) नृजातीय वर्णन से आपका क्या तात्पर्य है? भारत के सन्दर्भ में समझाइए।

2) सांस्कृतिक अस्मिता से आप क्या समझते हैं? भारत के सन्दर्भ में किन-किन युग्मों के माध्यम से सांस्कृतिक अस्मितावादी विमर्शों को समझा जा सकता है?

3) 'भाषा अपनी प्रकृति में संस्कृति सापेक्ष होती है।' इस कथन के पक्ष-विपक्ष में तर्क दीजिए।

4) अन्य बहुसांस्कृतिक राष्ट्रों की तुलना में भारतीय बहुसांस्कृतिकता अधिक जटिल क्यों है?

5) 'किसी भी संस्कृति के प्रसार में उसकी भाषा, साहित्य तथा अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।' स्पष्ट कीजिए।

6) क्या भूमण्डलीकरण ने सांस्कृतिक प्रसार में कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

## 5.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें


- Gmin, Michael; 2003. Translation and Globalization, London, Roultedge.
- Gmin, Michael; 2003. Translation and Identity, Oxon, Roultedge.
- Bhattacharya, H. 2003. Multiculturalism in Contemporary India, IJMS: International Journal on Multicultural Socieities. Vol 5, No. 2.

# इकाई 6 अनुवाद एवं पारसांस्कृतिक दक्षता का विकास

## इकाई की रूपरेखा


6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 पारसांस्कृतिक दक्षता से अभिप्राय

6.3 बहुसांस्कृतिक समाजों में अस्मिता की अवधारणा

6.4 पारसांस्कृतिक दक्षता विकसित करने में अनुवाद की भूमिका

6.5 समकालीन विश्व में पारसांस्कृतिक दक्षता की प्रासंगिकता

6.6 समकालीन भारत में पारसांस्कृतिक दक्षता की प्रासंगिकता

6.7 सारांश

6.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

6.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें


## 6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- पारसांस्कृतिक दक्षता की अवधारणा समझ सकेंगे।
- समकालीन समाज में पारसांस्कृतिक दक्षता की प्रासंगिकता समझ सकेंगे।
- पारसांस्कृतिक दक्षता विकसित करने में अनुवाद की भूमिका समझ सकेंगे।

## 6.1 प्रस्तावना

यह इकाई पारसांस्कृतिक दक्षता की अवधारणा और पारसांस्कृतिक दक्षता को ग्रहण करने में अनुवाद की भूमिका से आपको परिचित कराएगी। यह भूमण्डलीय तथा भारतीय दोनों ही परिदृश्यों में समकालीन विश्व में पारसांस्कृतिक दक्षता की प्रासंगिकता को विवेचित करती है। इसके साथ ही यह पारसांस्कृतिक दक्षता के विकास में अस्मिता और अनुभूति की अवधारणा से भी आपको परिचित कराएगी। अन्ततः हम पारसांस्कृतिक दक्षता के सभी पहलुओं के बारे में हमारे अध्ययन का एक निष्कर्ष निकालेंगे।

## 6.2 पारसांस्कृतिक दक्षता से अभिप्राय

अपनी संस्कृति के अलावा विभिन्न संस्कृतियों के बीच सम्प्रेषित करने, पारस्परिक वार्तालाप करने और समझने की क्षमता को पारसांस्कृतिक दक्षता कहा जाता है। यह दूसरी संस्कृति के सांस्कृतिक प्रतिमान और प्रणालियों का ज्ञान अथवा उससे परिचित होना है। पारभाषायी दक्षता से कहीं अधिक, पारसांस्कृतिक दक्षता एक समग्र अवधारणा है। जहां पार-भाषायी दक्षता भाषाओं के बीच संचार करने की क्षमता पर जोर देती है वहीं इसके विपरीत पारसांस्कृतिक दक्षता दूसरी भाषा और संस्कृति के माध्यम से दुनिया और स्वयं को दर्शाने की क्षमता को महत्व देती है। प्रत्येक व्यक्ति एक संस्कृति का उत्पाद होता है अर्थात् एक भाषा, एक प्रकार के सांस्कृतिक प्रतिमान, एक प्रकार की संज्ञानात्मक संचार व्यवस्था में विकसित होता है। यद्यपि इस धारणा को लेकर असहमतियाँ हैं क्योंकि ऐसे बहुत से समाज हैं जहाँ कई भाषाएँ और संस्कृतियाँ एक दूसरे में समा गई हैं, तथापि इस इकाई में इस तथ्य पर बल दिया गया है कि व्यक्ति के भाषायी और सांस्कृतिक प्रभाव का एक सीमित दायरा होता है जो उन्हें संस्कृति विशेष का एक विशिष्ट उत्पाद बनाता है। मानव समाज का अस्तित्व शून्य में आकार नहीं लेता अपितु वह विभिन्न संस्कृतियों से उपजे समाजों के बीच ही आकार ग्रहण करता है। दूसरे शब्दों में, मानव समाज किसी एक संस्कृति की देन नहीं है।

जीवन और जीविका के संसाधनों को आपस में बाँटने तथा मिल-जुल कर रहने की आवश्यकता विभिन्न समाजों के बीच पारस्परिक क्रियाकलापों को अनिवार्य बनाती है। अतीत में समाजों ने अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पारस्परिक सम्बन्ध जोड़े एवं संपर्क साधा। सार्थक संचार को आसान बनाने के लिए अन्तर्सांस्कृतिक संचार

के सभी रूपों जैसे – वाचिक, अवाचिक, अनुवाद तथा व्याख्या को पारस्परिक संवेदनशील और सम्माननीय होना चाहिए। अतीत में, अन्तर्सांस्कृतिक संचार एक छोटे तबके तक सीमित था, जिसमें यात्रीगण, व्यापारी, धार्मिक विद्वान, और शिक्षाविद आते थे। ये किसी न किसी प्रकार के सार्थक अन्तर्सांस्कृतिक संचार से जुड़े हुए थे। ये लोग पारसांस्कृतिक प्रतिमान और प्रणालियों से पूर्णतः अभिज्ञ थे और उनकी संचार पद्धति में ये सारे प्रतिमान प्रतिफलित होते थे। पारसांस्कृतिक प्रतिमान और प्रणालियों के साथ उनका परिचय अनूदित विदेशी पुस्तकें पढ़ने से कम तथा सुदूर देशों में नियमित भ्रमण करने के कारण अधिक था। संस्कृतियों के साथ संपर्क और पारस्परिक सम्बन्ध समाज के अति छोटे तबके तक सीमित था, अतः पारसांस्कृतिक दक्षता कभी भी एक अनुशासन के रूप में विकसित नहीं हुई। पारसांस्कृतिक दक्षता आधुनिक जीवन की मांग है जो भूमण्डलीकरण की तीव्रता से प्रभावित है। इसी कारण अपरिचित संस्कृतियों के बीच भी पारस्परिक सम्बन्ध बढ़े हैं। पारसांस्कृतिक दक्षता का अर्थ है कि एक व्यक्ति दूसरी संस्कृति की सांस्कृतिक बारीकियों से अवगत हो और अर्न्तसांस्कृतिक संचार के किसी भी रूप में इस समझ को प्रतिफलित करने की क्षमता रखता/ती हो। कहने का तात्पर्य यह है कि वह व्यक्ति अन्य संस्कृतियों की सांस्कृतिक विशेषताओं से भलीभांति अवगत हो, उसे समझने का सामर्थ्य रखता/ती हो तथा उसे उनके मध्य संचार में प्रतिफलित करने की क्षमता रखता/ती हो।

अनुवाद अन्तर्सांस्कृतिक संचार के कई रूपों में से एक है। संस्कृति और संचार अन्तर्सांस्कृतिक संचार के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। संस्कृति एक जीवन प्रणाली, आचार संहिता, विश्वास, व्यवहार, आदर्श, आचरण आदि के रूप में व्याख्यायित की जा सकती है, जिसका अनुकरण विभिन्न समुदायों के लोग अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए करते हैं (कॅलिअर, एम 1992)। संचार दूसरों से जुड़ने तथा साथ होने की एक प्रक्रिया है। संचार संस्कृति का एक अविभाज्य अंश है। मनुष्य जन्म के बाद संस्कृति को सीखते और ग्रहण करते हैं, इसलिए कहा जा सकता है कि संस्कृति से मनुष्य का सम्बन्ध जन्मजात नहीं होता। एक सार्थक अन्तर्सांस्कृतिक संचार को आसान बनाने के लिए विभिन्न संस्कृतियों के सांस्कृतिक प्रतिमानों की न्यूनतम सजगता और ग्रहणशीलता का होना जरूरी है। ये सांस्कृतिक प्रतिमान विभिन्न संस्कृतियों के बीच भिन्न-भिन्न साधनों – मीडिया, रेडियो, परिभ्रमण और अनूदित साहित्य के माध्यम से गतिशील रहते हैं। भिन्न सांस्कृतिक प्रतिमानों के साथ संश्लिष्टता व्यक्ति को पर-संस्कृति के निवासियों के साथ प्रभावी संचार कायम करने की क्षमता प्रदान करती है। पर-संस्कृति के प्रतिमानों के साथ इस संश्लिष्टता को पारसांस्कृतिक दक्षता कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक मारवाड़ी व्यापारी (पश्चिम भारत का प्रसिद्ध व्यापारी समुदाय) जब दूरवर्ती उत्तर-पूर्व भारत की ओर व्यापार के लिए जाता है, तो वह लक्ष्यीभूत संस्कृति की कथित भाषा, वाचिक और अवाचिक संचार शैली से भलीभांति परिचित होता है। भूमण्डलीकरण के इस वर्तमान दौर में आधुनिक संचार तकनीकों जैसे-मीडिया, सिनेमा, दूरभाष, टेलीविजन, इण्टरनेट का पारसांस्कृतिक दक्षता को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान है। इस इकाई में हम पारसांस्कृतिक दक्षता विकसित करने में अनुवाद की भूमिका पर विचार करेंगे।

पारसांस्कृतिक दक्षता व्यावहारिक भाषायी दक्षता, निर्वचन, अनुवाद, ऐतिहासिक और राजनीतिक चेतना, सामाजिक बोध और सौन्दर्य बोध की मांग करती है। यह केवल एक द्रुत, वैश्वीकृत विश्व की आधुनिक आवश्यकता ही नहीं है, जहाँ विभिन्न संस्कृति और सभ्यताओं के बीच पारस्परिक कार्यकलाप की गति बढ़ रही हो। न ही यह क्षमता एक बहु-सांस्कृतिक परिवेश में स्वयं के निर्वाह हेतु व्यक्ति विशेष के लिए बेहतर पसंद एवं विकल्प जुटाता हुआ एकमात्र स्वाभाविक धर्म है। वरन् यह मानव समाज के समृद्ध अस्तित्व और निरन्तरता को सुनिश्चित करने के लिए एक सामाजिक आवश्यकता है। यह कहा जा सकता है कि जो समाज और संस्कृतियाँ विच्छिन्न होकर जिए, वे समयानुक्रम में लुप्त हो गए। इस प्रकार निर्बाध और स्वस्थ अन्तर्सांस्कृतिक संचार समाज की दीर्घकालिकता को भी सुनिश्चित करेगा। एक निर्बाध अन्तर्सांस्कृतिक संचार के लिए समाज के सदस्यों में प्रभावशाली पारसांस्कृतिक दक्षता का होना आवश्यक है।

## 6.3 बहुसांस्कृतिक समाजों में अस्मिता की अवधारणा

जातीय और सांस्कृतिक दायरे के बाहर लोगों की अधिक गतिविधियों की वजह से मानव समाज अधिकतर बहुसांस्कृतिक होते जा रहे हैं। अधिक से अधिक एकल सांस्कृतिक समाज भूमण्डलीकरण की शक्ति के कारण विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों के लिए अपनी सीमाएँ खोल रहे हैं। ये समाज विदेशी सांस्कृतिक प्रतिमानों में ढल रहे हैं या ढलने की कोशिश कर रहे हैं, परिणामस्वरूप बहुसांस्कृतिक समाजों का उदय हो रहा है। ऐसे बहुसांस्कृतिक समाजों के सदस्यों के बीच भलीभाँति तराशी हुई पारसांस्कृतिक दक्षता उनके सद्भावनापूर्ण अस्तित्व

के लिए एक अत्यावश्यक स्तम्भ हो गई है। अस्मिता की अवधारणा पारसांस्कृतिक दक्षता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अस्मिता संस्कृति और संचार के बीच पुल का काम करती है। हम संचार के माध्यम से ही अपनी अस्मिता संप्रेषित करते हैं और संचार द्वारा ही सीखते हैं कि हम कौन हैं और दूसरे लोग इस बारे में क्या सोचते हैं कि 'हम कौन हैं'? संचार हमारी अस्मिता और व्यक्तित्व को दूसरों को समझाने और इस प्रक्रिया में दूसरों की अस्मिता के साथ पारस्परिक क्रिया करने में सहायता करता है। जब संचार पारसांस्कृतिक अथवा विभिन्न संस्कृतियों के बीच में हो, तब एक सद्भावनापूर्ण अन्तर्सांस्कृतिक संचार के लिए संचार में शामिल व्यक्ति विशेष की अस्मिता को सम्प्रेषित करना और समझना परमावश्यक है।

कुछ विद्वानों ने अस्मिता की अवधारणा को स्वीकृत अस्मिता और आरोप्य अस्मिता के व्यवहार में स्पष्ट किया है। व्यक्ति स्वयं को किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, यह स्वीकृत अस्मिता है जबकि दूसरे लोगों के बीच उनकी क्या पहचान है, यह आरोप्य अस्मिता है। (मार्टिन, जे एण्ड नाकायम, टी,2004)। एक सार्थक अन्तर्सांस्कृतिक संचार के लिए यह सबसे आवश्यक है कि वे उस अस्मिता को स्वीकृत करें। यह किसी भी वार्तालाप के लिए सबसे अहम होता है। मुम्बई बहुसांस्कृतिक समाज का एक उदाहरण है जहां देश के विभिन्न भागों-उत्तर भारत में यू. पी, बिहार से लेकर दक्षिण में तमिलनाडु, आंध्र- प्रदेश तक के लोग रहते हैं। धीरे-धीरे ये समुदाय 'मुम्बइया' अर्थात् मुम्बई के निवासी हो गए हैं और इनकी स्वीकृत अस्मिता बन गई है। हालांकि कभी कभी जब विस्थापित समुदायों की स्वीकृत अस्मिता उनकी आरोपित अस्मिता को स्थिर नहीं कर पाती, तब इनके बीच एक द्वन्द्व उत्पन्न होता है। स्वीकृत और आरोपित अस्मिता के बीच का यह द्वंद्व विश्व के सभी बहु सांस्कृतिक समाजों में कम अथवा ज्यादा मात्र में विद्यमान है। एक सार्थक व प्रभावशाली पारसांस्कृतिक दक्षता का लक्ष्य इस स्वीकृत और आरोप्य अस्मिता के अन्तर को कम करना है, इसलिए अस्मिता की अवधारणा पारसांस्कृतिक दक्षता विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

## 6.4 पारसांस्कृतिक दक्षता विकसित करने में अनुवाद की भूमिका

अनुवाद अन्तर्सांस्कृतिक संवाद का एक आवश्यक तत्त्व है। वस्तुतः यह अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण के प्राचीनतम रूपों में से एक रहा है, जिसने भौगोलिक सीमाओं के पार जाकर विचारों, ज्ञान, धार्मिक विचारों एवं व्यवहार, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों तथा वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार किया है। (मोंटगोमरी, एस. 2002)। मानव सभ्यता के आरम्भिक चरणों में साहित्यिक एवं धार्मिक पाठों के अनुवाद के जरिए ही सांस्कृतिक प्रतिमानों और रीति-रिवाजों को उन क्षेत्रों से परिचित कराया गया जो अब तक अपरिचित थे। साहित्यिक कृति का अनुवाद भी अपने आप में एक साहित्यिक कार्य ही माना जाता है। अनुवाद एक निर्णयात्मक प्रक्रिया है और इसके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सन्दर्भ सभी अवस्थाओं में निर्णयों को प्रभावित करते हैं। स्रोत भाषा, स्रोत भाषा पाठ, लेखक, उसका रचना काल, उसके काव्यशास्त्र से लेकर भाषायी कार्यनीति और सौन्दर्य शास्त्र- सभी निर्णय अनुवाद संस्कृति के साहित्यशास्त्र से प्रभावित होते हैं (केतकर, सचिन, 2003) लक्ष्य भाषा में अनूदित पाठ की उपलब्धता पाठक को स्रोत पाठ की संस्कृति में प्रचलित सांस्कृतिक प्रतिमानों की प्रत्यक्ष जानकारी देती है। अनूदित पाठ के जरिए ही लक्ष्य भाषा के लोगों को नई धार्मिक अवधारणाओं, रीति-रिवाजों एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों का परिचय प्राप्त हुआ।

प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म अनूदित धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से भारत की सीमाओं के पार जाकर उत्तर पश्चिम एशिया, मध्य एशिया, उत्तर-पूर्व एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया तक पहुँचा। धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद ने कोश निर्माण और द्विभाषिक शब्दकोशों की रचना को जन्म दिया, जो काफी सटीक रूपांतरण थे तथा इन्होनें एशियाई भाषाओं की वृद्धि एवं विकास में भरपूर सहयोग दिया (पाठक, एस. एवं मुखर्जी, बी. एन. 1978)। महासांघिक विनय एवं त्रिपिटिक जैसे धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद के माध्यम से ही मध्य एशिया नव क्षेत्र एवं चीन के लोग, जिनकी धार्मिक मान्यताऐं एवं संस्कृति भिन्न थीं, वे बौद्ध धर्म की मान्यताओं एवं व्यवहार में शिक्षित हो सके।

इस प्रकार की शिक्षा ने यात्रियों में पारसांस्कृतिक दक्षता विकसित की, जिसने प्रभावशाली अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कहने का तात्पर्य यह है कि जब यात्री और भिक्षु भौगोलिक सीमाओं के पार दूर दराज के क्षेत्रों में गए तो वे प्रचलित विदेशी सांस्कृतिक मान्यताओं से पहले से ही भली-भाँति परिचित थे। संभावित सांस्कृतिक परिदृश्य से स्वयं को पहले ही तैयार करने की इस दक्षता से उन्हें इच्छित लक्ष्य प्राप्ति में अभूतपूर्व लाभ मिला। फाह्यान और ह्वेन सांग जैसे चीनी यात्रा, जिन्होंने प्राचीन भारत में बहुत

भ्रमण किया था, वे भारतीय सांस्कृतिक रीति-रिवाजों से भली भाँति परिचित थे और इसलिए उन्हें स्थानीय शासकों से बेहतर सहयोग मिला। वे अपने साथ काफी मात्रा में बौद्ध धर्म के मूल ग्रंथ ले गए और उनका चीनी भाषा में अनुवाद किया जिसके परिणामस्वरूप उनके देश में बौद्ध धर्म फला-फूला। अनुवाद द्वारा विकसित पारसांस्कृतिक दक्षता तथा सहस्त्राब्दी के अन्य कारकों द्वारा मध्य एशिया और चीन के एक बड़े भू-भाग में 'सिल्क रूट' के जरिए व्यापार को फलने-फूलने में सहायता मिली।

धीरे-धीरे विकसित हो रहे पारसांस्कृतिक दक्ष व्यवसायियों के समुदायों से लाभान्वित यह व्यापार केवल भारत के पड़ोसियों तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इस पर विशाल उपमहाद्वीपीय भू-भाग के सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्धों का भी उत्तरदायित्व था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व से छठी शताब्दी ईस्वी सन् तक का काल सुदूर समुदाओं के साथ सक्रिय व्यापार और नए व्यापारिक रास्तों के खुलने का गवाह रहा है। व्यापारियों का ये समुदाय यात्रा करने के अतिरिक्त विदेशी भाषिक और सांस्कृतिक समुदायों से परस्पर संवाद भी स्थापित करता था। उत्तर भारत के संस्कृत भाषा केन्द्रों तथा दक्षिण के द्रविड़ भाषा विज्ञान केन्द्रों के बीच मजबूत व्यापारिक सम्बन्ध थे। शास्त्र सम्मत संस्कृत की साहित्यिक रचनाएँ जो क्रमवार रूप से महाकाव्यों यथा-रामायण, महाभारत, टीका-टिप्पणी जिसे टीका भाष्य कहा जाता था, से शुरू होती थीं, नाटकों जैसे-मेघदूतम, अभिज्ञानशाकुंतलम आदि अनेक कृतियों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद किया गया। अनुवाद मूलतः मूल कृति की अनुकृति और रूपान्तरण मात्र था जिसने भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को परस्पर जोड़ने का कार्य किया। अनूदित कृतियों ने भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर सांस्कृतिक व्यवहार को काफी समृद्ध किया। रामायण की कथा और दशहरा व दिवाली जैसे उत्सवों को क्षेत्रीय संस्कृतियों में रूपान्तरित और अनूदित किया गया। यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि भारतीय उपमहाद्वीप के विशाल भू-भाग में फैली भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को एकता के सूत्र में पिरोने और पारसांस्कृतिक दक्षता के विकास में अनुवाद ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह राष्ट्रीय एकता का एक महत्वपूर्ण साधन बन गया है।

पूर्व औद्योगिक समाजों में अनुवाद विचार एवं ज्ञान में वृद्धि करने वाला एक प्राथमिक स्रोत था जिसने धीरे-धीरे सामाजिक बन्धनों को तोड़ा। अनुदित कृतियों से लाभ उठाने वाले लोग न केवल पारसांस्कृतिक तौर पर समर्थ होकर अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में संलग्न हुए बल्कि रूढिवादी समाज को बदलने में भी उन्होने अहम् भूमिका निभाई मध्यकालीन भारत, भक्ति साहित्य के अनुवाद के माध्यम से अनेक क्षेत्रीय भाषाओं में भक्ति आंदोलन के विस्तार का साक्षी रहा है। ये पुनर्लेखन एक विश्वसनीय अनुकृति से कहीं अधिक रुपान्तरण और अनुकरण मात्र थे। इन अनुकृतियों का प्राथमिक लक्ष्य मूल 'कृति' का अनुकरण मात्र करना नहीं बल्कि दबे-कुचले और अशिक्षितों को सशक्त बनाना भी था। आधुनिक भारतीय समाज सुधारकों— जैसे राजाराममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, विष्णु शास्त्री चिपलंकर आदि विचारक, पश्चिम से आए अनूदित साहित्य के संपर्क से ही समानता और न्याय के आधुनिक विचारों से अवगत हुए। उन जैसे लोगों ने विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों से संवाद स्थापित कर आधुनिक भारत में सामाजिक चेतना और सामाजिक परिवर्तनों की लहर पैदा की। 18वीं सदी के अन्त और 19वीं सदी के प्रारम्भ में हुए इन सामाजिक जागरणों (सुधारों) के बिना सामाजिक विकास के रास्तों की कल्पना भी मुश्किल थी।

## 6.5 समकालीन विश्व में पारसांस्कृतिक दक्षता की प्रासंगिकता

आज हम एक ऐसे भूमण्डलीय समाज में रह रहे है जहाँ सूचना और संचार तकनीक के प्रयोग ने राष्ट्रीय सीमाओं और विभिन्न संस्कृतियों को परस्पर जोड़ने हेतु अभूतपूर्व रास्ते खोले हैं (वुल्फ. एम. 2004)। राष्ट्रीय सीमाओं के पार जाकर व्यक्तियों, पूँजी, प्रौद्योगिकी, ज्ञान, वस्तुओं, बाजार एवं सेवाओं का मुक्त आवागमन हो रहा है। अत्याधिक संख्या में शहरी केन्द्र, एकल सांस्कृतिक शहरों से सर्ववर्गीय महानगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। इन विजातीय शहरी केन्द्रों में विभिन्न संस्कृतियों के मध्य बढते परस्पर संवाद के दायरों ने विदेशी संस्कृतियों के साथ पारस्परिक व्यवहारों को अनुकूल बनाने के लिए 'भोजन के समय' को अल्प कर दिया है। बाजार की आवश्यकताओं एवं व्यवसाय की बदलती प्रकृति ने जनसाधारण के विदेशी संस्कृति के लोगों से संवाद करने के कठिन कार्य को सरल कर दिया है। अमेरिका और यूरोप के किसी गाँव के किसान के सांस्कृतिक और भाषायी आघात की यह कल्पना आश्चर्यजनक है जो अपने स्थानीय दूरसंचार प्रदाताओं को फोन करता है, परन्तु स्वयं को मुम्बई या मनीला में बैठे किसी अपरिचित संचालक से बात करते हुए पाता है। प्रायः लोगों को दुनिया के सुदूर क्षेत्रों में बैठे भिन्न संस्कृतियों के लोगों के साथ अपनी क्रेडिट कार्ड एवं वित्तीय मुद्दों जैसी जानकारियाँ

साझा करना कठिन लगता है। इन सर्ववर्गीय शहरी केन्द्रों या विस्तृत, भूमण्डलीय समाजों में होने वाले सद्भावपूर्ण अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषणों की वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यकता है। इस भूमण्डलीय विश्व में अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण सिर्फ कुछ विद्वानों, बौद्ध मठों, यात्रियों और साहसिक पर्यटकों तक सीमित नहीं बल्कि मानव समाज के प्रत्येक आम-सदस्य की आवश्यता के रूप में सामने आया है। परा सांस्कृतिक दक्षता को प्रभावशाली ढंग से प्रदर्शित कर सार्थक और सद्भावपूर्ण अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण को सहज बनाए रखना लोगों के लिए चुनौतीपूर्ण है।

विभिन्न संस्कृतियों और राष्ट्रीयता के लोगों के बीच बाज़ार संपर्क हेतु एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में उभरा है। यह पश्चिम के विकसित देशों में पैठ बना चुका है और विश्व के अन्य विकासशील देशों में तेजी से विस्तृत हो रहा है। राष्ट्रीय सीमाओं के पार बहुसांस्कृतिक कार्यबल प्रणाली अपनाकर और लोगों को नई संस्कृति के प्रति आकर्षित कर उत्पादों और सेवाओं को बेचने के प्रयास किए जा रहे हैं। बाजार के अगुआओं, नीति नियंताओं, संचालकों और उपभोक्ताओं की विषम सांस्कृतिक संवेदनशीलता व्यापार के लिए सबसे महत्वपूर्ण संपदा हो गई है। पारसांस्कृतिक दक्षता के प्रचार और प्रसार में अनुवाद एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। बाज़ारों को हथियाने के उद्देश्य से औद्योगिक देशों जैसे-अमेरिका, ब्रिटेन, जापान और ताइवान आदि देशों में बहुत बड़ी मात्रा में उपभोक्ता वस्तुएँ उत्पादित हो रही हैं जो अनेक स्थानीय और क्षेत्रीय भाषाओं में सहायक साहित्य प्रदान कर रही हैं। जापान और कोरिया में बना एक इलेक्ट्रॉनिक कैमरा या मोबाइल अपने लक्षित बाज़ारों के अनुसार चार या पाँच विभिन्न भाषाओं-जैसे-अंग्रेजी, जापानी, कोरियाई, चीनी, वियतनामी और अरबी आदि में सहायक साहित्यिक सामग्री उपलब्ध कराता है। इससे बाज़ार में अनुवाद का एक विशाल क्षेत्र उत्पन्न हो गया है। अनुवाद, भावी उपभोक्ताओं तक पहुँचने के लिए एक अनिवार्य बाज़ार उपकरण के रूप में उभरा है और कामगारों के लिए व्यापक स्तर पर रोज़गार उपलब्ध करा रहा है। अनुवाद में शिक्षित और प्रशिक्षित लोगों का यह विशाल समूह न केवल भाषायी विशेषज्ञ है, बल्कि अन्तर्सांस्कृतिक विशेषज्ञ भी है। इनसे यह अपेक्षित है कि वे लक्षित संस्कृति की नब्ज़ को पहचान कर सफलतापूर्वक अपने सम्भावित ग्राहकों तक अपनी पहुँच बना सकें।

राष्ट्रों के बीच बढ़ती अन्तर्सम्बद्धता ने न केवल अन्तर्सम्बद्ध बाजार उत्पन्न किए हैं बल्कि उसने हरेक राष्ट्र के व्यवहार को संयमित और नियंत्रित करने की आवश्यकता भी उत्पन्न की है। वर्तमान विश्व में भूमण्डलीय शांति, स्थिरता और अखंडता की इच्छा व्यापक भूमण्डलीय शासन-व्यवस्था में स्पष्ट रूप से दिखती है। वर्तमान समय में अनेक समसामयिक समस्याओं जैसे—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय समस्याओं से लड़ने और आपसी सहयोग के लिए राष्ट्रों ने साथ मिलकर भूमण्डलीय संस्थाओं, जैसे-यू.एन., डब्यू.टी.ओ., आई.एम. एफ. आदि का गठन किया है। ये संस्थाएँ निर्बाध अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण हेतु एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में भी उभरी हैं। यू.एन. जैसी संस्था की महत्वपूर्ण जननीतियों और प्रारूपों का उसकी छः कार्यालयी भाषाओं में एक साथ अनुवाद होता है। यूरोपियन यूनियन जैसी संस्थाओं की सामग्री को 23 विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। सूचना क्रांति का एक बड़ा लाभ यह है कि अब सभी अनूदित सामग्रियाँ वेब पोर्टल पर उपलब्ध हैं। यह अनुवाद के एक नए सेवा क्षेत्र के रूप में उभरने की तरफ संकेत है, जो एक बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार उपलब्ध करा रहा है। विकसित देशों में बड़ी संख्या में आ रहे प्रवासियों को भाषिक सहायता प्रदान करना, अनुवाद उद्योग का एक उभरता हुआ क्षेत्र है। गैर अंग्रेजी भाषी पृष्ठभूमि के लोग बड़ी संख्या में मुख्यतः अंग्रेजी भाषी देशों जैसे – ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, कनाडा, यू.एस.ए. में जाकर बस रहे हैं। इन देशों के प्रव्रजन विभाग अब इन नए आव्रजकों को अनुवादक और दुभाषिये की सेवाएँ दे रहे हैं (www.immi.gov.air)। जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है, अनुवादकों में न केवल भाषायी विशेषज्ञता होती है, अपितु इनमें सांस्कृतिक बन्धनों को भी तोड़ने की क्षमता होती है। समकालीन विश्व की बदलती सच्चाइयों ने सद्भावनापूर्ण अन्तर्सांस्कृतिक सम्बन्धों को बनाने के नए कारण दिए हैं। अन्य घटकों, जैसे – मीडिया, टेलीफोन, इंटरनेट, और पर्यटन में अनुवाद पारसांस्कृतिक दक्षता के एक महत्वपूर्ण वाहक के रूप में उभरा है।

## 6.6 समकालीन भारत में पारसांस्कृतिक दक्षता की प्रासंगिकता

भारत एक बहुभाषिक तथा बहुसांस्कृतिक देश है जहाँ विविध संस्कृतियाँ और भाषायी समुदाय एक साथ रहते हैं। भारतीय संविधान, जिसे एक आधारभूत बहुसांस्कृतिक दस्तावेज कहा जा सकता है, राष्ट्र की नीतियों का स्रोत है, जो देश की विविधता को एक मान्यता देने और अंगीकार करने के लिए राजनीतिक तथा संस्थानिक

कार्य योजना प्रदान करता है (भट्टाचार्य, एच. 2003)। इसमें भारत की 22 भाषाओं को राजभाषा के तौर पर मान्यता दी गई है, हालांकि अभी भी कई अन्य भाषाओं एवं बोलियों को स्वीकृति नहीं मिली है। प्रत्येक भाषा की समृद्ध परम्परा, इतिहास तथा गतिशीलता रही है जो सैंकड़ों वर्षों से फल-फूल रही है। अनुवाद ने भारत के अन्तर्भाषिक तथा अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रत्येक भाषिक समुदाय की समृद्ध विरासत विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में अनूदित होती रही है। इस प्रक्रिया में स्रोत एवं लक्ष्य भाषाएँ-दोनों ही समृद्ध हुई हैं। भारत में अनुवाद ने केवल भाषा के विकास में ही योगदान नहीं दिया, अपितु इसने राष्ट्रीय एकता को भी सुदृढ़ किया है। अनूदित साहित्य जैसे-कहानियाँ, उपन्यास, कविता इत्यादि ने करोड़ों भारतीयों को उनकी सांझी संस्कृति और विरासत में शिक्षित किया है। उत्तर, दक्षिण तथा पूर्वोत्तर भारत के लोगों को अनूदित साहित्यों तक पहुँच के कारण ही *पोंगल, बीहू* और *लोहड़ी* के परस्पर सांस्कृतिक व्यवहारों के बारे में ज्ञान हुआ है। अनेक महान विद्वानों जैसे बांग्ला के रविंद्रनाथ टैगोर, शरतचंद्र चट्टोपाध्याय, तमिल के अखिलान, कन्नड़ के यू. आर. अनंतमूर्ति, असमिया की इंदिरा गोस्वामी, मलयालम के एम. टी. वासुदेवन नायर, उड़िया के सीताकांत महापात्र आदि ने अनुवाद के माध्यम से अपनी-अपनी क्षेत्रीय सांस्कृतिक सीमाओं को पार किया है। भारत में अनुवाद केवल एक साहित्यिक कार्य नहीं है अपितु यह राष्ट्रीय एकता को प्रगाढ़ करने का महत्वपूर्ण साधन भी रहा है। अनूदित साहित्य ने करोड़ों भारतीयों को विभिन्न भाषाओं में कार्य करने के लिए न सही, लेकिन उसे समझने तथा अपनी-अपनी सम्प्रेषण शैली में उनकी विभिन्न संस्कृतियों की सूक्ष्मताओं को प्रतिबिम्बित करने के लिए शिक्षित और प्रशिक्षित किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से ही भारत आधुनिकीकरण एवं विकास के पथ पर अग्रसर है। क्षेत्रीय भाषिक एवं सांस्कृतिक समुदायों को एक साथ राष्ट्रीय संस्कृति में समाहित करने की कोशिशों के साथ इस यात्रा के आगे बढ़ाया गया है, जहाँ सभी क्षेत्रीय अस्मितओं को पूर्णतः अपनाया गया है। नब्बे के दशक से जब से भारत ने उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण की नीति को आधिकारिक तौर पर अपनाया है, तब से आधुनिकीकरण और विकास की गति में तेजी आई है। कठोर संगठनात्मक अवरोधों में क्रमिक रूप से गिरावट आई है जो हमारे विकास का रास्ता रोके खड़ी थीं। इस विषय में अनुवाद को भारत की वृद्धि और विकास को बढ़ाने में अहम भूमिका निभानी है। आधुनिकीकरण से लाभान्वित होने के लिए अनुवाद को सांस्कृतिक बंधनों और क्षेत्रीय सीमाओं से परे जाकर लोगों को एकीकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

इक्कीसवीं सदी का भारत एक बौद्धिक समाज बनने के प्रयास में है। इसके लिए भौतिक या प्राकृतिक संसाधनों के बजाय बौद्धिक क्षमताओं पर निर्भर होने की जरूरत है। पारसांस्कृतिक दक्षता इस बौद्धिक सामर्थ्य का प्रमुख पहलू है। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण ने एक मुक्त बाजार तैयार किया है जो उद्यमिता को बढ़ावा दे रहा है, नए अवसर पैदा कर रहा है तथा देश के विभिन्न भागों में समृद्धि ला रहा है। व्यापार और कार्यबल काफी मात्रा में विविध सांस्कृतिक वातावरण में कार्य कर रहे है। कई व्यवसाय अपने स्थानीय सांस्कृतिक दायरे से बाहर काम कर रहे हैं तथा नए सांस्कृतिक समूहों के बड़े उपभोक्ता वर्ग तक पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं। हिन्दी भाषा आधिपत्य से घिरी दिल्ली आधारित कम्पनियां अपने उत्पाद अहिन्दी भाषी दक्षिणी क्षेत्रों में बेचने की कोशिश कर रही हैं। दक्षिण के कई प्रदेश, जैसे-हैदराबाद, बैंगलोर, चेन्नई आदि सेवा क्षेत्र में रोज़गार के लोकप्रिय केन्द्र बनकर उभरे हैं तथा देश के सुदूर क्षेत्रों से कार्यबल को आकर्षित कर रहे हैं। बाज़ार में निर्बाध वृद्धि तथा विकास को बढ़ाने के लिए सद्भावनापूर्ण अन्तर्सांस्कृतिक मेलजोल एक आवश्यकता बन गई है। पारसांस्कृतिक दक्षता की आवश्यकता पहले कभी इतनी अधिक महसूस नहीं की गई थी। लोगों को अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में विभिन्न संस्कृतियों के प्रति समझ और आपसी सद्भाव प्रदर्शित करने के लिए शिक्षित और दक्ष करने की आवश्यकता है। सिनेमा और मीडिया जैसे माध्यमों के साथ-साथ अनुवाद को भी अन्तर्सांस्कृतिक दक्षता को विकसित करने में योगदान देना होगा। इन उभरती चुनौतियों को ध्यान में रखकर केन्द्र सरकार के राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (नेशनल नॉलेज कमीशन), जो भारत को बौद्धिक समाज बनाने की दिशा में गठित किया गया है, उसने अनुवाद की बौद्धिक समाज निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण साधन के तौर पर अनुशंसा की है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के अनुसार, अनुवाद के क्षेत्र में 500,000 युवाओं को रोजगार दिए जाने की क्षमता है और इन अनुवाद कार्यो को लोगों के बीच अंग्रेजी भाषा की पहुँच को बढ़ाने की योजना तथा स्कूली शिक्षा में प्राथमिक स्तर पर अंग्रेजी के प्रोत्साहन से जोड़कर देखा जाना चाहिए। ये दोनों ज्ञान-वृद्धि की योजना के पहलू है। (www.knowledgecommission.gov.in)

पारसांस्कृतिक दक्षता को प्रोत्साहन देने में अनुवाद की भूमिका केवल मुद्रित साहित्य तक ही सीमित नहीं है।

इंटरनेट के आगमन तथा वेब जर्नल की नई अवधारणा ने अनुवाद की दुनिया को और भी अधिक सक्रिय बना दिया है तथा इसने भारत मे अन्तर्सांस्कृतिक दक्षता को विकसित करने में सहायता की है (www.the hindu.com) वेब जर्नल इंटरनेट के कारण 'भूमण्डलीय' हो गया है, जिसने राष्ट्रीय तथा भौगोलिक सीमाओं को आसानी से पार कर लिया है। अब यह एक सस्ते तथा सशक्त माध्यम के रूप में उभर रहा है तथा पाठकों को भी सरलता से उपलब्ध हो रहा है। इससे विश्व भर के पाठकों के बीच तीव्र संवाद और चर्चा को सहायता मिली है। भारत जैसे देश में जहाँ अभी भी मुद्रित पाठ तथा साहित्य की अनुपलब्धता ज्ञान प्राप्ति में बाधक है, ये वेब जर्नल ज्ञान की उन्नति में महत्वपूर्ण साधन का कार्य कर रहे है। म्यूज़ इंडिया, प्रतिलिपि इत्यादि जैसे वेब जर्नल न केवल एक भाषा में साहित्य प्रकाशित कर रहे हैं अपितु वे विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में तथा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं से अनूदित भी कर रहे हैं। इन वेब जर्नलों में जो साहित्य प्रकाशित होता है, उसका अनुवाद विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में तथा क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य का अनुवाद अंग्रेजी में किया जा रहा है। यह अनुवाद के मंच के रूप में उभर रहा है तथा भारत में ज्ञान के प्रसार के लिए सांस्कृतिक बन्धनों को तोड़ने में सहायता कर रहा है (www.thehindu.com)। यद्यपि अभी यह विकास की आरम्भिक अवस्था में है, परन्तु इसमें भारत में अनूदित साहित्य के विस्तार की अपूर्व क्षमता है।

## 6.7 सारांश

इस इकाई में, हमने अन्तर्सांस्कृतिक दक्षता की अवधारणा तथा भूमण्डलीय एवं भारतीय – दोनों परिप्रेक्ष्य में बहुसांस्कृतिक समाजों में उसके महत्व पर चर्चा की। हमने यह भी चर्चा की कि पारसांस्कृतिक दक्षता, मात्र पर-भाषावैज्ञानिक दक्षता ही नहीं हैं, अपितु वह अन्य भाषा व संस्कृति के लेन्स (वीक्ष) द्वारा स्वयं तथा समस्त विश्व को अभिव्यक्त करने की सक्षमता है। अस्मिता की अवधारणा भी सद्भावनापूर्ण अन्तर्सांस्कृतिक संचार का महत्वपूर्ण संकल्प है। बहुसांस्कृतिक दक्षता में अन्तर्सांस्कृतिक दक्षता के विकास के सन्दर्भ में अनुवाद ने सदैव पारसांस्कृतिक संचार माध्यम की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है तथा निरन्तर कर रहा है। अनुवाद सदैव भौगोलिक सीमाओं के परे विचार, ज्ञान, धार्मिक सिद्धान्त तथा मान्यताओं, साहित्य तथा सांस्कृतिक आदर्शों के प्रचुर प्रसारण में सहायक रहा है। समकालीन दौर के भूमण्डलीय परिप्रेक्ष्य में भी, जहाँ अन्तर्सांस्कृतिक संचार के अधिक विकसित माध्यम उपलब्ध हैं, अनुवाद के विभिन्न रूप–व्यावसायिक, साहित्य, ई-पत्रिकाएँ आदि निरन्तर पारसांस्कृतिक दक्षता के विकास में प्रमुख भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

## 6.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) पारसांस्कृतिक दक्षता से आप क्या समझते हैं? इसकी आवश्यकता क्यों है?

2) स्वीकृत तथा आरोप्य अस्मिता में क्या अन्तर है?

3) भक्तिकाल में पारसांस्कृतिक दक्षता के विकास में अनुवाद की भूमिका पर टिप्पणी कीजिए।

4) भूमण्डलीकृत समाज में पारसांस्कृतिक दक्षता विकसित करने में अनुवाद की क्या भूमिका हो सकती है। स्पष्ट कीजिए।

5) भारत जैसे बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक देश में पारसांस्कृतिक दक्षता के महत्व एवं अनुवाद की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

## 6.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें


- Bhattacharya, H., 2003. "Multiculturalism in Contemporary India" ***IJMS: International Journal on Multicultural Societies.*** Vol 5. No. 2, UNESCO ISSN 1817-4574.
- Collier, J. Marry, 1992. "Cultural Identity and Intercultural Communication: An Overview" in ***Intercultural Communication Process: Some Approaches.*** Lynne Rienner Publications, Boulder, London.
- Collier, V. P. and Thomas, W.P. 1988. ***The effect of Age on acquisition of Second Language for School***. Washington DC: National Clearing House for Bilingual Education.

- http://www.thehindu.com/lr/2009/12/06/stories/2009120650020100.htm
- http://greekbuffet.wordpress.com/2007/06/03/encouraging-translingual-competence/
- http://www.scribd.com/doc/8967612/Translation-The-Renaissance-Paradigm
- Ketkar, S., 2003. "Translation: The Renaissance Paradigm" A.K. Singh (ed) ***Indian Renaissance Literature.*** Creative Books, New Delhi.
- Martin, Judith and Nakayama, Thomas, 2004. "Identity and Intercultural Communication" in ***Intercultural Communication in Contexts,*** McGraw-Hill, Boston, pp147-190
- Martin, Wolf, 2004. ***Why Globalization Works.*** Yale University Press
- McDaniel, Edwin, Samovar, Larry Porter, Richard, 1993. "Understanding Intercultural Communication: An Overview" in ***Intercultural Communication Process: Some Approaches.*** Lynne Rienner Publications, Boulder, London.
- Montgomery, S., 2002. ***Science in Translation. Movements of knowledge through Cultures and Time.*** University of Chicago Press. Chicago and London.
- Pathak, S. and Mukherjee, B.N., 1978. "Tibet, Mongolia, Siberia" in S. K. Chatterjee (ed) ***Indian Literatures Abroad.*** *In* ***Languages and Literatures (The Cultural heritage of India Volume V).*** The Ramakrishna Mission Institute of Culture Calcutta. 2003.
- www.unesco.org/shs/ijms/vol5/issue/2/art4
- www.knowledgecommission.gov.in
- www.immi.gov.au